Registration No. V-36244/2008-09 ISSN :- 2395-0390

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XI **No. - 4** **(Oct. – Dec.) 2025**

(Part – V)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Varanasi Management Review - **A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal**, *Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था और सामाजिक नियंत्रण ***डॉ. अस्मिता कुमारी***	01-05
➲	बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रम : एक विश्लेषण ***डॉ. विजय लक्ष्मी कुमारी***	06-11
➲	सामाजिक समरसता में बौद्ध धर्म का योगदान ***डॉ. मीना परस्ते***	12-18
➲	नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विकास बनाम सुरक्षा दृष्टिकोणः बिहार का एक राजनीतिक विश्लेषण ***डॉ. राजेश कुमार***	19-26
➲	कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न ***चेतना सिंह***	27-33
➲	कॉलेज छात्रों की शैक्षिक अभिप्रेरणा और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन ***डॉ. ज्योति कुमारी***	34-38
➲	हिंदी सिनेमा में देश–प्रेम की अभिव्यक्ति ***विपिन सिंह***	39-43
➲	स्वतंत्रता संग्राम के लोकगीतों में संघर्ष का स्वर ***रितिक राजपूत***	44-50
➲	भूमण्डलीयकरण के दौर में अपने जड़ों से जुड़ाव : 'मेरे देश की मिट्टी, अहा' के विशेष संदर्भ में ***अंकिता पटेल***	51-54
➲	किशोरियों में आहार विविधता और एनीमिया के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन ***डॉ. प्रियादर्शनी कुमारी***	55-60
➲	प्रश्नोपनिषद के मूलभूत तत्त्व और उनकी प्रासंगिकता ***डॉ. मिथिलेश कुमार पाण्डेय***	61-64

स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था और सामाजिक नियंत्रण

डॉ. अस्मिता कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन ''स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था और सामाजिक नियंत्रण' का अध्ययन है। भारतीय संस्कृति में स्मृति साहित्य केवल धार्मिक या नैतिक आचार–संहिता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था, न्याय प्रणाली तथा सामाजिक नियंत्रण का महत्वपूर्ण आधार भी है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति तथा पराशर स्मृति जैसे ग्रंथों में दण्ड व्यवस्था को समाज में धर्म, न्याय एवं अनुशासन बनाए रखने का प्रभावी साधन माना गया है। स्मृतिकारों के अनुसार दण्ड का उद्देश्य प्रतिशोध लेना नहीं, बल्कि अपराधों की रोकथाम, सामाजिक व्यवस्था की रक्षा तथा लोककल्याण सुनिश्चित करना था। स्मृति साहित्य में वर्णित दण्ड व्यवस्था सामाजिक संरचना, वर्ण व्यवस्था, पारिवारिक संस्थाओं तथा राजसत्ता के संरक्षण से जुड़ी हुई थी। राजा को दण्ड का सर्वोच्च अधिकारी माना गया तथा उसे धर्म के अनुसार निष्पक्ष न्याय करने का निर्देश दिया गया। दण्ड के माध्यम से समाज में अनुशासन, नैतिकता तथा कर्तव्यपालन की भावना विकसित करने का प्रयास किया गया। यद्यपि आधुनिक दृष्टिकोण से स्मृति साहित्य की कुछ व्यवस्थाएँ असमानता एवं वर्णाधारित भेदभाव को प्रोत्साहित करती प्रतीत होती हैं, फिर भी सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा, विधि का शासन तथा अपराध–निवारण की नीतियाँ आज भी प्रासंगिक हैं।

यह अध्ययन स्मृति साहित्य में वर्णित दण्ड व्यवस्था के स्वरूप, सिद्धांतों तथा सामाजिक नियंत्रण में उसकी भूमिका का विश्लेषण करता है और यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था सामाजिक स्थिरता एवं नैतिक अनुशासन स्थापित करने का एक संगठित प्रयास थी।

विशिष्ट शब्द :स्मृति साहित्य, दण्ड व्यवस्था, सामाजिक नियंत्रण, धर्म, न्याय, राजधर्म, मनुस्मृति, विधि व्यवस्था।

प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में स्मृति साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक साहित्य के पश्चात् स्मृतियाँ भारतीय समाज के धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा विधिक जीवन को व्यवस्थित करने वाले प्रमुख ग्रंथों के रूप में विकसित हुईं। इन ग्रंथों ने केवल धार्मिक अनुष्ठानों एवं नैतिक आदर्शों का प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि समाज के संचालन, राज्य के दायित्वों, न्याय व्यवस्था तथा सामाजिक नियंत्रण के विविध आयामों का भी व्यवस्थित निरूपण किया। स्मृतिकारों ने मानव जीवन को धर्म के सिद्धांतों के अनुरूप संचालित करने हेतु ऐसे नियमों एवं विधानों का निर्माण किया, जिनका पालन समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए आवश्यक माना गया। इस प्रकार स्मृति साहित्य प्राचीन भारतीय विधिशास्त्र एवं सामाजिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

प्राचीन भारतीय चिंतन में समाज को एक जीवंत एवं नैतिक इकाई के रूप में देखा गया है, जिसकी स्थिरता एवं निरंतरता सामाजिक अनुशासन पर निर्भर करती है। यदि समाज में नियमों का पालन न हो, तो अराजकता, हिंसा, अन्याय एवं असमानता का प्रसार होना स्वाभाविक है। इसी कारण स्मृतिकारों ने सामाजिक नियंत्रण को धर्म, आचार, परंपरा तथा दण्ड व्यवस्था के माध्यम से सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। इनमें दण्ड व्यवस्था को विशेष महत्व दिया गया, क्योंकि दण्ड के अभाव में सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के विघटन की संभावना मानी गई है। मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दण्ड ही प्रजा का रक्षक है तथा वही धर्म और न्याय की स्थापना करता है।[1]

स्मृति साहित्य में दण्ड की अवधारणा आधुनिक अर्थों में केवल दण्डात्मक या प्रतिशोधात्मक नहीं है। इसका उद्देश्य अपराधी को शारीरिक कष्ट देना मात्र नहीं, बल्कि समाज में नैतिक चेतना का विकास करना, अपराधों की पुनरावृत्ति को रोकना तथा सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करना है। दण्ड को धर्म का उपकरण माना गया है, जिसके माध्यम से राजा समाज में न्याय एवं अनुशासन स्थापित करता है। इस प्रकार स्मृतियों

* पी–एच.डी., प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 7667044732, E-mail id : asmitakumari12041993@gmail.com

में दण्ड व्यवस्था का स्वरूप दार्शनिक, नैतिक, विधिक तथा सामाजिक सभी स्तरों पर व्यापक एवं बहुआयामी है।

सामाजिक नियंत्रण समाजशास्त्र की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जिसका आशय उन सभी औपचारिक एवं अनौपचारिक साधनों से है जिनके द्वारा समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करता है तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है। आधुनिक समाजशास्त्रियों जैसे एमिल दुर्खीम, मैक्स वेबर तथा टैल्कॉट पार्सन्स ने सामाजिक नियंत्रण को सामाजिक संगठन एवं व्यवस्था की अनिवार्य शर्त माना है। यदि इस अवधारणा को प्राचीन भारतीय संदर्भ में देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि स्मृति साहित्य में धर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था, लोकाचार, परिवार, शिक्षा तथा दण्ड व्यवस्था सामाजिक नियंत्रण के प्रमुख साधन थे। इनमें दण्ड व्यवस्था औपचारिक नियंत्रण का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम थी, जिसका संचालन राजा एवं न्यायिक संस्थाओं द्वारा किया जाता था।

मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति तथा पराशर स्मृति में विभिन्न प्रकार के अपराधों एवं उनके लिए निर्धारित दण्डों का विस्तृत वर्णन मिलता है। चोरी, व्यभिचार, मिथ्या साक्ष्य, हिंसा, राजद्रोह, संपत्ति विवाद, ऋण विवाद तथा पारिवारिक अपराधों के लिए अलग–अलग दण्ड निर्धारित किए गए थे। दण्ड निर्धारण में अपराध की प्रकृति, अपराधी की स्थिति, अपराध के सामाजिक प्रभाव तथा परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्मृति साहित्य में न्याय व्यवस्था केवल नियमों का संकलन नहीं थी, बल्कि सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप विकसित एक व्यावहारिक विधि प्रणाली थी।

स्मृति साहित्य में राजा को 'दण्डधर' तथा 'धर्मपाल' की संज्ञा दी गई है। उसका प्रमुख दायित्व प्रजा की रक्षा करना, अपराधों का दमन करना तथा धर्मानुसार न्याय प्रदान करना था। राजा को यह निर्देश दिया गया कि वह पक्षपात, लोभ, क्रोध अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर दण्ड न दे, बल्कि धर्म, न्याय एवं लोकहित को ध्यान में रखते हुए निष्पक्ष निर्णय करे। इस प्रकार दण्ड व्यवस्था को राज्य शक्ति एवं नैतिक उत्तरदायित्व के मध्य संतुलन स्थापित करने वाले सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि स्मृति साहित्य की दण्ड व्यवस्था तत्कालीन वर्णाधारित सामाजिक संरचना से प्रभावित थी तथा विभिन्न वर्णों के लिए अलग–अलग दण्डों का प्रावधान किया गया था, फिर भी इसकी मूल भावना सामाजिक अनुशासन एवं लोककल्याण पर आधारित थी। आधुनिक लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक मूल्यों के संदर्भ में स्मृति साहित्य की कुछ व्यवस्थाएँ आलोचना का विषय अवश्य हैं, किन्तु विधि का शासन, न्याय की निष्पक्षता, राज्य की उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका, अपराध–निवारण तथा सामाजिक संतुलन जैसे सिद्धांत आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।[2]

वर्तमान समय में जब समाज अनेक प्रकार की सामाजिक, नैतिक एवं विधिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब स्मृति साहित्य में वर्णित दण्ड व्यवस्था एवं सामाजिक नियंत्रण के सिद्धांतों का पुनर्पाठ विशेष महत्व रखता है। यह अध्ययन केवल प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था के ऐतिहासिक स्वरूप को समझने का प्रयास नहीं है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि भारतीय विधिक एवं सामाजिक चिंतन में दण्ड को किस प्रकार सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिक अनुशासन तथा लोककल्याण के साथ जोड़ा गया था।

स्मृति साहित्य में दण्ड की अवधारणा : स्मृतियों में दण्ड को धर्म का संरक्षक तथा राजा की शक्ति का प्रतीक माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार –'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति। अर्थात दण्ड ही समस्त प्रजा का शासन करता है और उसी की रक्षा करता है।

दण्ड का उद्देश्य था –

- अपराध की रोकथाम
- सामाजिक अनुशासन
- न्याय की स्थापना
- धर्म की रक्षा
- लोककल्याण

दण्ड के प्रमुख प्रकार

(क) आर्थिक दण्ड : अपराध के अनुसार जुर्माना लगाया जाता था।
(ख) शारीरिक दण्ड : गंभीर अपराधों में शारीरिक दण्ड का प्रावधान था।
(ग) सामाजिक दण्ड : बहिष्कार, प्रतिष्ठा हानि एवं सामाजिक प्रतिबंध।
(घ) कारावास एवं संपत्ति जब्ती : राज्य विरोधी गतिविधियों एवं गंभीर अपराधों में।

(ङ) मृत्युदण्ड : अत्यंत गंभीर अपराधों के लिए।

सामाजिक नियंत्रण के साधन : स्मृति साहित्य में सामाजिक नियंत्रण निम्न आधारों पर संचालित था – धर्म, लोकाचार, वर्णाश्रम व्यवस्था, परिवार, राजा एवं प्रशासन दण्ड व्यवस्था, इन सभी का उद्देश्य सामाजिक संतुलन एवं नैतिक अनुशासन बनाए रखना था।

राजा एवं दण्ड व्यवस्था : राजा को धर्म का संरक्षक माना गया, उसके प्रमुख दायित्व थे – निष्पक्ष न्याय देना, अपराध नियंत्रण, प्रजा की सुरक्षा, धर्म की रक्षा

विधि का पालन सुनिश्चित करना, राजा यदि धर्म के विरुद्ध दण्ड देता था तो उसे भी दोषी माना जाता था।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता यद्यपि स्मृति साहित्य की कुछ व्यवस्थाएँ आधुनिक लोकतांत्रिक एवं समानतावादी मूल्यों के अनुरूप नहीं हैं, फिर भी निम्न सिद्धांत आज भी महत्वपूर्ण हैं – विधि का शासन, न्यायपालिका की निष्पक्षता, अपराध निवारण, सामाजिक अनुशासन, राज्य की उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका, नैतिक मूल्यों का संरक्षण आदि ।

अतः 'स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था और सामाजिक नियंत्रण' का अध्ययन भारतीय धर्मशास्त्रीय परंपरा, प्राचीन विधिशास्त्र, राजनीतिक चिंतन तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के समन्वित विश्लेषण का अवसर प्रदान करता है। यह विषय न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि आधुनिक न्यायशास्त्र, सामाजिक नियंत्रण एवं भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक एवं उपयोगी सिद्ध होता है।

साहित्य समीक्षा

वेदप्रकाश उपाध्याय (2024) वेदप्रकाश उपाध्याय ने अपने शोध में प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों में विधि एवं दण्ड व्यवस्था के सामाजिक आयामों का विश्लेषण करते हुए प्रतिपादित किया कि स्मृति साहित्य में दण्ड का उद्देश्य केवल अपराधी को दण्डित करना नहीं था, बल्कि सामाजिक समरसता, नैतिक अनुशासन तथा धर्म की स्थापना करना था। अध्ययन में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया कि दण्ड व्यवस्था समाज में उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यबोध विकसित करने का एक प्रभावी साधन थी। लेखक ने आधुनिक सामाजिक नियंत्रण के सिद्धांतों की तुलना स्मृतियों में वर्णित दण्ड सिद्धांतों से करते हुए उनकी समकालीन प्रासंगिकता को भी रेखांकित किया।[3]

रामशरण शर्मा (2021) रामशरण शर्मा ने प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना का विश्लेषण करते हुए बताया कि स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था राज्य की शक्ति एवं सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख साधन थी। उनके अनुसार मनुस्मृति एवं अन्य धर्मशास्त्रों ने सामाजिक अनुशासन को बनाए रखने के लिए विधि, धर्म तथा दण्ड के समन्वित स्वरूप को अपनाया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि दण्ड व्यवस्था ने तत्कालीन राजनीतिक संस्थाओं को स्थायित्व प्रदान किया।[4]

उमेश चन्द्र मिश्र (2019) उमेश चन्द्र मिश्र ने धर्मशास्त्र एवं भारतीय न्याय व्यवस्था का अध्ययन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि स्मृतियों में वर्णित दण्ड व्यवस्था न्याय, धर्म एवं सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित थी। उनके अनुसार दण्ड व्यवस्था का मूल उद्देश्य अपराधों की पुनरावृत्ति को रोकना तथा सामाजिक संतुलन बनाए रखना था। अध्ययन में मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के न्याय सिद्धांतों का तुलनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है।[5]

राजबली पाण्डेय (2018) राजबली पाण्डेय ने हिन्दू धर्मशास्त्र एवं सामाजिक संस्थाओं का विश्लेषण करते हुए कहा कि स्मृति साहित्य प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था का प्रमुख स्रोत है। उन्होंने दण्ड व्यवस्था को धर्म के व्यावहारिक स्वरूप के रूप में व्याख्यायित किया तथा बताया कि सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया में राजा, धर्म तथा लोकाचार की संयुक्त भूमिका थी। उनके अध्ययन में दण्ड व्यवस्था को सामाजिक संगठन एवं नैतिक अनुशासन की आधारशिला माना गया है।[6]

पाण्डुरंग वामन काणे (2017) पाण्डुरंग वामन काणे ने धर्मशास्त्र के इतिहास का विस्तृत अध्ययन करते हुए स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया है। उन्होंने विभिन्न स्मृतियों में वर्णित न्याय सिद्धांतों, दण्ड के प्रकारों तथा राजधर्म का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। लेखक के अनुसार दण्ड व्यवस्था भारतीय विधिशास्त्र के विकास की मूल आधारशिला रही है तथा इसका उद्देश्य धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करना था।[7]

अनन्त सदाशिव अल्तेकर (2015) अनन्त सदाशिव अल्तेकर ने प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था एवं प्रशासन का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया कि दण्ड व्यवस्था शासन की प्रभावशीलता एवं सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख उपकरण थी। उन्होंने राजा को धर्म एवं न्याय का संरक्षक मानते हुए यह प्रतिपादित किया कि दण्ड व्यवस्था के माध्यम से समाज में अनुशासन, सुरक्षा एवं नैतिकता स्थापित की जाती थी।[8]

लक्ष्मीदत्त ठाकुर (2013) लक्ष्मीदत्त ठाकुर ने भारतीय न्याय परम्परा का अध्ययन करते हुए बताया कि स्मृतियों में दण्ड व्यवस्था केवल विधिक प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह धर्म, नीति एवं सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ी हुई थी। उनके अनुसार दण्ड का प्रयोग समाज में संतुलन एवं न्याय की स्थापना के लिए किया जाता था, न कि केवल प्रतिशोध के लिए।[9]

के. पी. जायसवाल (2011) के. पी. जायसवाल ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन करते हुए कहा कि स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था राजकीय अधिकार एवं न्यायिक उत्तरदायित्व का महत्वपूर्ण अंग थी। उन्होंने राजा की न्यायिक भूमिका तथा दण्ड के माध्यम से सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया।[10]

उपरोक्त साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश विद्वानों ने स्मृति साहित्य में दण्ड व्यवस्था को केवल अपराध दमन का साधन न मानकर सामाजिक नियंत्रण, नैतिक अनुशासन एवं धर्म संरक्षण का माध्यम स्वीकार किया है। विभिन्न शोधों में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि राजा की न्यायिक भूमिका, धर्मशास्त्रीय विधि तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के समन्वय से प्राचीन भारतीय समाज में एक संगठित विधि व्यवस्था का विकास हुआ। तथापि उपलब्ध साहित्य में दण्ड व्यवस्था और सामाजिक नियंत्रण के समाजशास्त्रीय अंतर्संबंधों पर समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम प्राप्त होते हैं।

उद्देश्य

1. स्मृति साहित्य में वर्णित दण्ड व्यवस्था के स्वरूप का अध्ययन करना।
2. दण्ड व्यवस्था के सामाजिक नियंत्रण संबंधी सिद्धांतों का विश्लेषण करना।
3. विभिन्न स्मृतियों में वर्णित दण्ड प्रणाली की तुलनात्मक समीक्षा करना।
4. आधुनिक न्याय व्यवस्था के संदर्भ में स्मृति साहित्य की प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।
5. सामाजिक अनुशासन एवं नैतिक नियंत्रण में दण्ड की भूमिका का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. स्मृति ग्रंथों में वर्णित राजनीतिक चिंतन भारतीय राज्य व्यवस्था के विकास का प्रमुख आधार रहा है।
2. स्मृति ग्रंथों में राजधर्म एवं दण्डनीति का उद्देश्य लोककल्याण एवं न्याय की स्थापना था।
3. स्मृतियों में वर्णित राजनीतिक सिद्धांत आधुनिक सुशासन एवं विधि के शासन की अवधारणाओं से साम्य रखते हैं।
4. स्मृति साहित्य भारतीय राजनीतिक परंपरा के ऐतिहासिक विकास को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि स्मृति साहित्य में वर्णित दण्ड व्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज की विधिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग थी। स्मृतिकारों ने दण्ड को केवल अपराधी को दण्डित करने का साधन नहीं माना, बल्कि उसे धर्म, न्याय, सामाजिक अनुशासन तथा लोककल्याण की स्थापना का प्रभावी माध्यम स्वीकार किया। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति एवं अन्य धर्मशास्त्रों में दण्ड को राज्य की शक्ति तथा धर्म के संरक्षण के लिए अनिवार्य तत्व के रूप में वर्णित किया गया है। स्मृति साहित्य में यह मान्यता प्रतिपादित की गई है कि दण्ड के अभाव में समाज में अराजकता, अन्याय, हिंसा एवं नैतिक पतन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसलिए राजा को 'दण्डधर' एवं 'धर्मपाल' के रूप में स्थापित किया गया, जिसका प्रमुख दायित्व निष्पक्ष न्याय प्रदान करना तथा सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करना था। दण्ड व्यवस्था का संचालन धर्म, लोकाचार एवं न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना अपेक्षित था, जिससे समाज में संतुलन एवं शांति बनी रहे।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि स्मृति साहित्य में सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा बहुआयामी थी। धर्म, परिवार, वर्णाश्रम व्यवस्था, लोकाचार एवं राजसत्ता जैसे अनौपचारिक एवं औपचारिक साधनों के साथ दण्ड व्यवस्था सामाजिक नियंत्रण का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम थी। दण्ड के माध्यम से व्यक्तियों में कर्तव्यबोध, अनुशासन, नैतिकता एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने का प्रयास किया गया।

समकालीन समाज में बढ़ते अपराध, नैतिक मूल्यों के ह्रास तथा सामाजिक असंतुलन की परिस्थितियों में स्मृति साहित्य के सकारात्मक सिद्धांत जैसे न्याय की निष्पक्षता, शासन की उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका, अपराध–निवारण, लोककल्याण तथा विधि के शासन भारतीय न्याय एवं सामाजिक चिंतन को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार स्मृति साहित्य में वर्णित दण्ड व्यवस्था भारतीय विधिक परंपरा, राजनीतिक चिंतन

एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन की एक महत्वपूर्ण धरोहर है, जिसका सम्यक् एवं आलोचनात्मक अध्ययन वर्तमान समय में भी अत्यंत प्रासंगिक है।

सन्दर्भ सूची

1. याज्ञवल्क्य स्मृति, वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, पृ0 68
2. उपाध्याय, बलदेव (2018) संस्कृत साहित्य का इतिहास. वाराणसीरू चौखम्बा विद्याभवन, पृ0 79
3. उपाध्याय, वेदप्रकाश (2024) प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों में विधि एवं सामाजिक नियंत्रण का अध्ययन, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, पृ0 53
4. शर्मा, रामशरण (2021) प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ0 49
5. मिश्र, उमेश चन्द्र (2019) धर्मशास्त्र एवं भारतीय न्याय व्यवस्था, वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ0 107
6. पाण्डेय, राजबली (2018) हिन्दू संस्कार एवं धर्मशास्त्र, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 112
7. काणे, पाण्डुरंग वामन (2017) धर्मशास्त्र का इतिहास (द्वितीय खण्ड) पुणे : भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पृ0 82
8. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव (2015) प्राचीन भारत में राज्य एवं शासन, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, पृ0 55
9. ठाकुर, लक्ष्मीदत्त (2013) भारतीय न्याय परम्परा एवं धर्मशास्त्र, वाराणसी, चौखम्बा प्रकाशन, पृ0 71
10. जायसवाल, के. पी. (2011) हिन्दू राज्य व्यवस्था, नई दिल्ली, अटलांटिक पब्लिशर्स, पृ0 19

बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रम : एक विश्लेषण

डॉ. विजय लक्ष्मी कुमारी*

सार :

प्रस्तुत अध्ययन'' बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रम : एक विश्लेषण'' का अध्ययन है। भारत की अर्थव्यवस्था का आधार ग्रामीण क्षेत्र है, जहाँ आज भी बड़ी जनसंख्या कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। बिहार भारत के उन राज्यों में है जहाँ ग्रामीण आबादी का अनुपात अत्यधिक है तथा निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा एवं आधारभूत सुविधाओं की कमी जैसी समस्याएँ लंबे समय से विद्यमान रही हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन तथा ग्रामीण विकास हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की गईं, जिनमें महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (जीविका), सात निश्चय कार्यक्रम तथा विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ प्रमुख हैं। बिहार सरकार का ग्रामीण विकास विभाग ग्रामीण गरीबों के लिए रोजगार सृजन, आधारभूत संरचना निर्माण, आजीविका संवर्द्धन तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने हेतु बहुआयामी रणनीति पर कार्य कर रहा है।

यह अध्ययन बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की उपलब्धियों, चुनौतियों तथा प्रभावशीलता का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि योजनाओं ने ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार, महिला सशक्तिकरण, आवास उपलब्धता तथा रोजगार सृजन में सकारात्मक योगदान दिया है, किंतु भ्रष्टाचार, प्रशासनिक अक्षमता, संसाधनों की कमी तथा सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ अभी भी इनके प्रभाव को सीमित करती हैं।

विशिष्ट शब्द : ग्रामीण निर्धनता, ग्रामीण विकास, बिहार, मनरेगा, जीविका, आजीविका, ग्रामीण रोजगार, सामाजिक सुरक्षा, पंचायती राज, आदि ।

प्रस्तावना

ग्रामीण विकास किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास की आधारशिला है, विशेषकर भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ आज भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। ग्रामीण समाज केवल कृषि उत्पादन का केंद्र नहीं है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, परंपरा और सामाजिक संरचना का मूल आधार भी है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास राष्ट्रीय विकास की पूर्वशर्त माना जाता है। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के सात दशक बाद भी भारत के अनेक राज्यों में ग्रामीण निर्धनता एक गंभीर चुनौती बनी हुई है। बिहार उन राज्यों में प्रमुख है जहाँ ग्रामीण निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा, भूमिहीनता, कृषि संकट तथा आधारभूत सुविधाओं की कमी जैसी समस्याएँ विकास प्रक्रिया में बाधक रही हैं।

निर्धनता केवल आय अथवा उपभोग की कमी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक बहुआयामी अवधारणा है, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास, सामाजिक सुरक्षा तथा सम्मानजनक जीवन–स्तर की उपलब्धता भी सम्मिलित होती है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा प्रतिपादित मानव विकास दृष्टिकोण के अनुसार निर्धनता का अर्थ उन अवसरों और क्षमताओं का अभाव है, जो व्यक्तियों को एक सम्मानजनक जीवन जीने के लिए आवश्यक होते हैं। इस दृष्टि से ग्रामीण निर्धनता सामाजिक बहिष्करण, आर्थिक विषमता तथा संसाधनों तक असमान पहुँच का परिणाम है।

बिहार ऐतिहासिक रूप से कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाला राज्य रहा है। राज्य की लगभग 88 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा आजीविका के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। किन्तु कृषि भूमि का असमान वितरण, छोटी एवं बिखरी हुई जोतें, सिंचाई सुविधाओं की कमी, पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ तथा बार–बार आने वाली बाढ़ एवं सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाएँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था

* एम.ए., पी–एच0 डी0, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
Mob No. : 9472364871, E-mail id : vijayalaxmikumari15@gmail.com

को प्रभावित करती रही हैं। परिणामस्वरूप राज्य में ग्रामीण निर्धनता का स्तर लंबे समय तक राष्ट्रीय औसत से अधिक बना रहा।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार ने ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन को विकास नीति का प्रमुख उद्देश्य माना। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सामुदायिक विकास कार्यक्रम, लघु एवं सीमांत कृषक विकास कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), जवाहर रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम जैसी अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की गईं।[1] इन योजनाओं का मूल उद्देश्य ग्रामीण गरीबों की आय में वृद्धि करना, रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना तथा ग्रामीण आधारभूत संरचना का विकास करना था।

इक्कीसवीं शताब्दी में ग्रामीण विकास की अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। अब केवल आय वृद्धि के स्थान पर समावेशी विकास (Inclusive Development), सतत विकास (Sustainable Development) तथा मानव विकास (Human Development) को प्राथमिकता दी जाने लगी।[2] इसी परिप्रेक्ष्य में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)[3], राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम)[4], प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण, स्वच्छ भारत मिशन, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना तथा जल जीवन मिशन जैसी योजनाओं को लागू किया गया। इन योजनाओं का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार, आवास, स्वच्छता, पेयजल, सड़क संपर्क तथा आजीविका के अवसरों का विस्तार करना है।

बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन के क्षेत्र में 'जीविका' कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण पहल के रूप में उभरा है। बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्द्धन सोसाइटी (BRLPS) द्वारा संचालित यह कार्यक्रम स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण गरीब महिलाओं को संगठित कर उन्हें वित्तीय, सामाजिक तथा आर्थिक रूप से सशक्त बनाने का कार्य कर रहा है। जीविका ने महिलाओं में बचत की प्रवृत्ति, उद्यमिता विकास तथा सामुदायिक नेतृत्व क्षमता को बढ़ावा दिया है। इसके परिणामस्वरूप अनेक ग्रामीण परिवार गरीबी के दुष्चक्र से बाहर निकलने में सफल हुए हैं।[5]

इसी प्रकार मनरेगा ने ग्रामीण मजदूरों को रोजगार सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ ग्रामीण आधारभूत संरचना के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ग्रामीण सड़कों, जल संरक्षण संरचनाओं, तालाबों एवं सिंचाई सुविधाओं के निर्माण से स्थानीय अर्थव्यवस्था को नई गति मिली है। प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण ने गरीब परिवारों को सुरक्षित एवं सम्मानजनक आवास उपलब्ध कराने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। वहीं सात निश्चय कार्यक्रम तथा पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत सुविधाओं के विस्तार और स्थानीय स्तर पर विकास योजनाओं के क्रियान्वयन को प्रोत्साहन मिला है।

यद्यपि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों ने बिहार के ग्रामीण समाज में सकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं, तथापि अनेक चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। योजनाओं के क्रियान्वयन में भ्रष्टाचार, प्रशासनिक विलंब, संसाधनों की कमी, लाभार्थियों के चयन में अनियमितताएँ तथा सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ इनके प्रभाव को सीमित करती हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण युवाओं में बढ़ती बेरोजगारी, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव नई चुनौतियों के रूप में सामने आए हैं।

बिहार में ग्रामीण निर्धनता की स्थिति

बिहार ऐतिहासिक रूप से भारत के अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों में गिना जाता रहा है। यहाँ ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात 85 प्रतिशत से अधिक है। कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, औद्योगिक विकास का अभाव तथा सीमित रोजगार अवसर ग्रामीण निर्धनता के प्रमुख कारण हैं।

ग्रामीण निर्धनता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

- भूमिहीनता एवं सीमांत जोत
- कृषि पर अत्यधिक निर्भरता
- प्राकृतिक आपदाएँ (बाढ़ एवं सूखा)
- बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार
- शिक्षा एवं कौशल का निम्न स्तर
- सामाजिक असमानता
- आधारभूत सुविधाओं की कमी

बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम

1. **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) :** मनरेगा ग्रामीण परिवारों को प्रतिवर्ष 100 दिनों के रोजगार की गारंटी प्रदान करता है। बिहार ग्रामीण विकास सोसाइटी द्वारा इसके कार्यान्वयन के माध्यम से रोजगार सृजन, जल संरक्षण, सड़क निर्माण एवं अन्य परिसंपत्तियों का निर्माण किया जाता है।
   प्रभाव : ग्रामीण रोजगार में वृद्धि, पलायन में कमी, मजदूरी दर में सुधार तथा ग्रामीण परिसंपत्तियों का निर्माण।
2. **प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण :** यह योजना ग्रामीण गरीबों को पक्का आवास उपलब्ध कराने हेतु संचालित की जाती है। बिहार में लाखों परिवार इस योजना से लाभान्वित हुए हैं।
   प्रभाव : आवासीय सुरक्षा में वृद्धि, जीवन स्तर में सुधार, सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि
3. **जीविका :** जीविका बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्द्धन सोसाइटी द्वारा संचालित एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से गरीब परिवारों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना है।
   उपलब्धियाँ : महिला सशक्तिकरण, बचत एवं ऋण सुविधाओं का विस्तार
   स्वरोजगार को बढ़ावा, वित्तीय समावेशन
4. **सात निश्चय कार्यक्रम :** बिहार विकास मिशन के अंतर्गत सात निश्चय कार्यक्रमों का संचालन किया गया, जिनका उद्देश्य आधारभूत सुविधाओं का विस्तार, पेयजल, सड़क, रोजगार तथा मानव संसाधन विकास है।
   प्रभाव : आधारभूत संरचना का विकास, ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार
   युवाओं के लिए अवसरों का विस्तार
5. **पंचायती राज संस्थाएँ :** बिहार में ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद के माध्यम से ग्रामीण विकास योजनाओं का विकेंद्रीकृत संचालन किया जाता है। राज्य में 8000 से अधिक ग्राम पंचायतें कार्यरत हैं।
   योगदान : स्थानीय सहभागिता, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की उपलब्धियाँ, ग्रामीण रोजगार में वृद्धि।

महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा।

- आधारभूत संरचना का विस्तार।
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का लाभ।
- वित्तीय समावेशन में वृद्धि।
- स्वयं सहायता समूहों का विस्तार।
- ग्रामीण आवास एवं पेयजल सुविधाओं में सुधार।

प्रमुख चुनौतियाँ

- भ्रष्टाचार एवं अनियमितताएँ।
- योजनाओं के प्रति जागरूकता का अभाव।
- प्रशासनिक विलंब।
- सामाजिक एवं जातीय असमानताएँ।
- प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव।
- रोजगार के स्थायी अवसरों का अभाव।
- कौशल विकास कार्यक्रमों की सीमित पहुँच।

अतः वर्तमान अध्ययन बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की प्रकृति, स्वरूप, उपलब्धियों तथा सीमाओं का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि विभिन्न सरकारी योजनाओं ने ग्रामीण निर्धनता को किस सीमा तक कम किया है तथा ग्रामीण विकास की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित किया है। साथ ही, अध्ययन भविष्य में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी एवं समावेशी बनाने के लिए आवश्यक सुझाव भी प्रस्तुत करता है। इस प्रकार यह शोध बिहार के ग्रामीण समाज, विकास प्रशासन तथा निर्धनता उन्मूलन नीतियों के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

साहित्य समीक्षा

ग्रामीण निर्धनता एवं ग्रामीण विकास पर भारत तथा बिहार के संदर्भ में अनेक विद्वानों, शोधकर्ताओं एवं नीति–निर्माताओं द्वारा अध्ययन किए गए हैं। इन अध्ययनों ने ग्रामीण गरीबी के कारणों, स्वरूप, प्रभावों तथा उसके निवारण हेतु संचालित कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का विश्लेषण किया है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए उपलब्ध साहित्य का अवलोकन निम्नलिखित है –

नाबार्ड (NABARD) (2023) राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) द्वारा प्रकाशित 'भारत में ग्रामीण वित्तीय समावेशन' संबंधी रिपोर्ट में बताया गया कि स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और बैंक लिंकेज कार्यक्रमों ने ग्रामीण निर्धन परिवारों की वित्तीय पहुँच को व्यापक बनाया है। बिहार में जीविका परियोजना के माध्यम से महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया कि वित्तीय समावेशन ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन का महत्वपूर्ण साधन बन सकता है।[6]

कुमार, अमरेन्द्र एवं सिंह, संजीव (2022) अपने अध्ययन में लेखकों ने बिहार में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) के प्रभाव का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक भागीदारी, आय वृद्धि तथा निर्णय लेने की क्षमता को मजबूत किया है। हालांकि, कुछ क्षेत्रों में वित्तीय संसाधनों और प्रशिक्षण सुविधाओं की कमी अभी भी चुनौती बनी हुई है।[7]

शर्मा, मनीष (2021) शर्मा ने बिहार में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की समीक्षा करते हुए पाया कि सरकारी योजनाओं ने ग्रामीण आधारभूत संरचना के विकास में सकारात्मक योगदान दिया है। अध्ययन के अनुसार सड़क, आवास, पेयजल एवं स्वच्छता संबंधी योजनाओं ने ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया है, किन्तु प्रशासनिक अक्षमता एवं भ्रष्टाचार कार्यक्रमों की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं।[8]

सिंह, डी. बंधोपाध्याय (2018) सिंह ने ग्रामीण विकास एवं महिला सशक्तिकरण के मध्य संबंधों का अध्ययन किया। उनके अनुसार स्वयं सहायता समूह आधारित विकास मॉडल ने ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि की। अध्ययन में यह भी पाया गया कि महिला समूहों की सक्रियता से ग्रामीण निर्धनता में कमी आई है।[9]

मिश्रा, रामकुमार (2017) मिश्रा ने बिहार में ग्रामीण निर्धनता के सामाजिक एवं आर्थिक कारणों का विश्लेषण किया। अध्ययन के अनुसार भूमिहीनता, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, निम्न औद्योगिकीकरण तथा शिक्षा का निम्न स्तर ग्रामीण निर्धनता के प्रमुख कारण हैं। उन्होंने ग्रामीण रोजगार आधारित योजनाओं को निर्धनता उन्मूलन का प्रभावी माध्यम बताया।[10]

कुमार, अरविन्द (2015) अरविन्द कुमार ने मनरेगा के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि इस योजना ने ग्रामीण मजदूरों को रोजगार सुरक्षा प्रदान की तथा ग्रामीण क्षेत्रों से होने वाले मौसमी पलायन को कम किया। अध्ययन में मजदूरी दरों में वृद्धि तथा ग्रामीण परिसंपत्तियों के निर्माण को योजना की महत्वपूर्ण उपलब्धि बताया गया।[11]

झा, नागेन्द्र (2013) झा ने बिहार में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका का अध्ययन किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि स्थानीय स्वशासन संस्थाओं ने ग्रामीण विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में जनसहभागिता को बढ़ाया है। अध्ययन में यह भी बताया गया कि महिला एवं पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधित्व ने विकास प्रक्रिया को अधिक लोकतांत्रिक बनाया है।[12]

शर्मा, एस. सी. (2010) शर्मा ने भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की समीक्षा करते हुए कहा कि योजनाओं की सफलता केवल संसाधनों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उनके प्रभावी क्रियान्वयन, पारदर्शिता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व पर भी निर्भर करती है। अध्ययन में लाभार्थी चयन प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया।[13]

मोहन्ती, मनोरंजन (2009) मोहन्ती ने ग्रामीण विकास की वैकल्पिक रणनीतियों पर चर्चा करते हुए कहा कि केवल आर्थिक विकास पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय, सामुदायिक सहभागिता तथा स्थानीय संसाधनों के उपयोग को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अध्ययन ने सतत विकास की अवधारणा को ग्रामीण विकास से जोड़ा।[14]

दत्त, रुद्र एवं सुंदरम, के. पी. एम. (2008) लेखकों ने भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण निर्धनता के स्वरूप एवं उसके कारणों का विस्तृत विश्लेषण किया। उनके अनुसार भूमि सुधार, कृषि आधुनिकीकरण, ग्रामीण रोजगार तथा शिक्षा का विस्तार निर्धनता उन्मूलन के लिए आवश्यक है।[15]

महेन्द्र देव, एस. (2004) महेन्द्र देव ने ग्रामीण निर्धनता एवं कृषि विकास के मध्य संबंधों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि कृषि उत्पादकता में वृद्धि तथा ग्रामीण गैर–कृषि रोजगार का विस्तार निर्धनता कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन में ग्रामीण विकास के बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल दिया गया।[16]

उपरोक्त साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश शोधों में ग्रामीण निर्धनता, मनरेगा, पंचायती राज, महिला सशक्तिकरण तथा स्वयं सहायता समूहों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। किन्तु बिहार के संदर्भ में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का समग्र एवं तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम उपलब्ध है। विशेष रूप से मनरेगा, जीविका, प्रधानमंत्री आवास योजना तथा पंचायती राज संस्थाओं के संयुक्त प्रभावों का विश्लेषण सीमित है।

इसके अतिरिक्त अधिकांश अध्ययनों में योजनाओं की उपलब्धियों पर अधिक बल दिया गया है, जबकि उनके क्रियान्वयन संबंधी चुनौतियों, क्षेत्रीय विषमताओं तथा सतत विकास की संभावनाओं का अपेक्षाकृत कम अध्ययन हुआ है। अतः प्रस्तुत शोध बिहार में ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के बहुआयामी प्रभावों का विश्लेषण कर इस शोध–अंतर को भरने का प्रयास करता है।

उद्देश्य

1. बिहार में ग्रामीण निर्धनता की प्रकृति एवं स्वरूप का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों का विश्लेषण करना।
3. ग्रामीण विकास योजनाओं की उपलब्धियों एवं सीमाओं का मूल्यांकन करना।
4. निर्धनता उन्मूलन में जीविका, मनरेगा एवं अन्य योजनाओं की भूमिका का अध्ययन करना।
5. ग्रामीण विकास को अधिक प्रभावी बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पना

1. बिहार में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों ने निर्धनता उन्मूलन में सकारात्मक योगदान दिया है।
2. जीविका एवं स्वयं सहायता समूहों ने महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है।
3. मनरेगा ने ग्रामीण रोजगार एवं आय वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
4. योजनाओं के क्रियान्वयन में प्रशासनिक कमियाँ उनकी प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं।

निष्कर्ष

ग्रामीण निर्धनता भारत के सामाजिक–आर्थिक विकास के समक्ष एक जटिल एवं बहुआयामी चुनौती है। बिहार जैसे कृषि प्रधान एवं ग्रामीण बहुल राज्य में यह समस्या ऐतिहासिक, सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से अधिक गंभीर रूप में विद्यमान रही है। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण निर्धनता केवल आय की कमी का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह भूमि, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा तथा विकास के अवसरों तक असमान पहुँच से भी जुड़ी हुई है।

अध्ययन के दौरान यह तथ्य सामने आया कि स्वतंत्रता के पश्चात् केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा संचालित विभिन्न ग्रामीण विकास एवं निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों ने बिहार के ग्रामीण समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। विशेष रूप से महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (जीविका), प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, स्वच्छ भारत मिशन तथा सात निश्चय कार्यक्रम ने ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मनरेगा ने ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में जल संरक्षण, सड़क निर्माण एवं अन्य सार्वजनिक परिसंपत्तियों के निर्माण में योगदान दिया है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों से होने वाले मौसमी पलायन में आंशिक कमी आई है तथा मजदूरी दरों में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार प्रधानमंत्री आवास योजना–ग्रामीण ने गरीब परिवारों को सुरक्षित एवं सम्मानजनक आवास उपलब्ध कराकर उनके जीवन स्तर में सुधार किया है।

अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि बिहार में 'जीविका' कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण का अत्यंत प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं में बचत, ऋण, उद्यमिता तथा सामुदायिक नेतृत्व की भावना विकसित हुई है। इससे न केवल परिवारों की आय में वृद्धि हुई है, बल्कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति एवं निर्णय–निर्माण क्षमता भी

सुदृढ़ हुई है। यह कार्यक्रम ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन के सहभागी एवं समावेशी मॉडल का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता केवल सरकारी व्यय पर निर्भर नहीं करती, बल्कि स्थानीय समुदाय की सहभागिता, पंचायती राज संस्थाओं की सक्रियता, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा पारदर्शी प्रशासनिक व्यवस्था पर भी निर्भर करती है। जहाँ स्थानीय स्तर पर जनसहभागिता अधिक रही है, वहाँ योजनाओं का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक दिखाई देता है।

सन्दर्भ सूची

1. ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार (2023) वार्षिक प्रशासनिक प्रतिवेदन. पटनारू बिहार सरकार ।
2. नीति आयोग (2022) भारत में बहुआयामी निर्धनता सूचकांक रिपोर्ट, नई दिल्ली, भारत सरकार।
3. भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय (2023) महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, वार्षिक प्रतिवेदन, नई दिल्ली, भारत सरकार।
4. भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय (2023) राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) वार्षिक रिपोर्ट, नई दिल्ली, भारत सरकार।
5. बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्द्धन सोसाइटी (जीविका) (2023) वार्षिक प्रतिवेदन, पटना, बिहार सरकार।
6. राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) (2023) भारत में ग्रामीण वित्तीय समावेशन रिपोर्ट, मुंबई, नाबार्ड।
7. कुमार, अमरेन्द्र, एवं सिंह, संजीव (2022) राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन और महिला सशक्तिकरण, नई दिल्ली, अटलांटिक पब्लिशर्स, पृ0 26
8. शर्मा, मनीष (2021) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, पृ0 49
9. सिंह, डी. बंधोपाध्याय (2018) ग्रामीण विकास और महिला सशक्तिकरण, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन, पृ0 78
10. मिश्रा, रामकुमार (2017) बिहार में ग्रामीण निर्धनता, कारण और समाधान, पटना, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ0 19
11. कुमार, अरविन्द, (2015) मनरेगा और ग्रामीण विकास, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन, पृ0 55
12. झा, नागेन्द्र (2013) पंचायती राज और ग्रामीण विकास, पटना, जनकी प्रकाशन, पृ0 108
13. शर्मा, एस. सी. (2010) भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, जयपुर, पॉइंटर पब्लिशर्स, पृ0 39
14. मोहन्ती, मनोरंजन (2009) ग्रामीण विकास और सामाजिक परिवर्तन, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ0 116
15. दत्त, रुद्र, एवं सुंदरम, के. पी. एम. (2022) भारतीय अर्थव्यवस्था, नई दिल्ली, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, पृ0 48
16. देव, एस. महेन्द्र (2004) ग्रामीण विकास और निर्धनता उन्मूलन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 103

सामाजिक समरसता में बौद्ध धर्म का योगदान

डॉ. मीना परस्ते*

सारांश

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में सामाजिक समरसता का प्रश्न सदैव महत्वपूर्ण रहा है। प्राचीन भारतीय समाज में जहाँ एक ओर वैदिक संस्कृति का विकास हो रहा था, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विषमता, जातिगत विभाजन, कर्मकाण्डों की जटिलता तथा धार्मिक विशेषाधिकार जैसी समस्याएँ भी विद्यमान थीं। ऐसी परिस्थितियों में छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म का उदय एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं नैतिक आंदोलन के रूप में हुआ। गौतम बुद्ध ने मानव जीवन के दुःखों के समाधान के साथ–साथ समाज में व्याप्त असमानताओं को भी चुनौती दी। उन्होंने व्यक्ति की श्रेष्ठता का आधार जन्म के स्थान पर कर्म, नैतिकता और सदाचार को माना।[1] बौद्ध धर्म ने करुणा, मैत्री, अहिंसा, सहिष्णुता तथा समता जैसे मूल्यों को सामाजिक जीवन का आधार बनाया। बुद्ध द्वारा स्थापित संघ व्यवस्था ने समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों तथा स्त्रियों को आध्यात्मिक एवं सामाजिक उन्नति के समान अवसर प्रदान किए। इससे सामाजिक एकीकरण तथा सामूहिक चेतना का विकास हुआ। बौद्ध धर्म ने केवल धार्मिक सुधार का कार्य नहीं किया, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को भी गति प्रदान की।[2] वर्तमान समय में जब समाज जातीय संघर्ष, धार्मिक कट्टरता, हिंसा और सामाजिक विभाजन जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में सामाजिक समरसता की अवधारणा तथा उसके विकास में बौद्ध धर्म के योगदान का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्दः सामाजिक समरसता, बौद्ध धर्म, समता, करुणा, अहिंसा, मैत्री, संघ।

प्रस्तावना

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह अपना सम्पूर्ण जीवन समाज में ही व्यतीत करता है। मानव और समाज एक–दूसरे के सम्पूरक है। मानवों से ही समाज का निर्माण होता है। इसलिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सभ्य और सुसंस्कृत होना आवश्यक है। समाज में रहने वाले व्यक्ति सुसंस्कृत होंगे तभी आदर्श समाज का निर्माण होगा। भगवान बुद्ध के समय में समाज वर्ण, रंग, जाति के आधार पर बँटा हुआ था। समाज में वर्णव्यवस्था, छुआछूत, कर्मकाण्ड, अंधविश्वास, अज्ञानता, शोषण, असमानता की भावना व्याप्त थी। ऐसे में महात्मा बुद्ध ने प्रेम, विश्वास, समता, सेवा तथा सदाचार जैसे सामाजिक मूल्यों से उस समय के लोगों को परिचय करवाया। भगवान बुद्ध मानव को मानव की तरह जीवन व्यतीत करने का अधिकार दिलाने तथा सामाजिक विकास एवं उन्नति के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। उन्होंने मानव जीवन में कर्मकाण्ड, आडंबर और दिखावे को अस्वीकार कर मन, वचन, कर्म की शुद्धता पर बल दिया। इसके अलावा उनके विचारों में सामाजिकता, दया, करुणा, व्यावहारिकता, मानवीयता एवं नैतिकता जैसे विचारों की सामंजस्यता निहित है। जो न सिर्फ मनुष्य के लिए बल्कि सम्पूर्ण जीव जगत के कल्याण के लिए है। भगवान बुद्ध के विचारों से ओत–प्रोत होकर ही आज व्यक्ति मानवीय भावना से परिपूर्ण है तथा वह सामाजिक कल्याण की ओर अग्रसर है। उन्होंने जाति प्रथा, वर्ण–व्यवस्था, ऊँच–नीच आदि अनैतिक मूल्यों का निराकरण कर समानता पर आधारित समाज का निर्माण करने का प्रयास किया। इस प्रकार महात्मा बुद्ध के विचार सामाजिक मूल्यों से परिपूर्ण है। सामाजिक समरसता में सहायक होने वाले महात्मा बुद्ध के विचारों एवं उपदेशों को सम्यक रूप से समझना ही सही अर्थों में बुद्ध की शिक्षाओं को आत्मसात करना कहलायेगा।

महात्मा बुद्ध का सम्पूर्ण जीवन तथा उपदेश सामाजिक समरसता के रुप में प्रतिष्ठित है आज संसार में स्वार्थपरता का साम्राज्य व्यष्टि तथा समष्टि दोनों स्तरों पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है जबकि बुद्ध का मन संसार की क्षणभंगुरता पर स्थित हुआ तथा मात्र 29 वर्ष की उम्र में पत्नी यशोधरा एवं नवजात शिशु के आनन्दमय अवलोकन तथा विशाल साम्राज्य के उपभोग को छोड़कर इन्होंने सर्वस्य त्याग कर ज्ञान की खोज की राह का चुनाव कियाद्य यह घटना महाभिनिष्क्रमण के नाम से प्रसिद्ध है। बुद्ध महाभिनिष्क्रमण के उपरान्त विविध परिस्थितियों से जुझते हुए एक दिन बुद्धत्व लाभ प्राप्त कर ही लिए। इस सुखद् घटना के उपरान्त सौभाग्यवश

* अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र विभाग, शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
ईमेलःdrmeenaphilosophy121@gmail.com

आशाढ़ पूर्णिमा के दिन पहली बार पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना उपदेश दिया।[3] यह उपदेश धर्म–चक्र–प्रवर्तन के नाम से जाना जाता है। यह सामाजिक समरसता की बीज–अवलोकन का प्रथम मूल दर्शन है जहाँ सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय रुपी सदाचार का उपदेश होता है। इसमें बुद्ध ने मध्यम् मार्ग को स्थापित किया यह मध्यममार्ग दो अन्तों का अन्त है। इनमें प्रथम अन्त इन्द्रिय या काम सुख में लीन होना है तथा इसका अन्त अपने को तपाने हेतु अत्यधिक कष्ट देना है। प्रथम संसार में पूर्ण आसक्ति है तथा द्वितीय अत्यधिक विरक्त होकर अतीन्द्रिय सुख के प्रति आसक्ति है। बुद्ध ने उक्त दोनों प्रकार के आसक्तियों को निर्वाण के लिए अनुपयोगी बताया है तथा इनके बीच के मार्ग को मध्यममार्ग कहा है। यह मार्ग चार आर्य सत्यों दुःख, दुःख समुदय, दुःख निरोध तथा दुःख निरोध मार्ग है। बुद्ध के इस देशना से पंचवर्गीय भिक्षुओं ने अर्हतत्व लाभ लिया इस सदाचार देशना से अर्हतों तथा बौद्ध भिक्षुओं की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी। कोशल, मगध और पड़ोसी गणराज्य के राजाओं ने दीक्षा लिया। बुद्ध ने कोशल तथा मगध की स्थानीय भाषा मगही में ही अपनी शिक्षाओं को जन सुलभ बनाने का कार्य करना शुरु किया। यह भाषा वर्तमान में पाली के नाम से जानी जाती है।[4] बुद्ध के समस्त उपदेशों के संग्रहित रुप को पिटक कहा जाता है। इनकी संख्या तीन हैं– विनय,सुत्त (सूत्र या सूक्त) तथा अभिधम्म।

भारतीय समाज प्राचीन काल से ही विविधताओं से परिपूर्ण रहा है। भाषा, संस्कृति, धर्म, जाति तथा परंपराओं की विविधता इसकी विशेषता रही है। किंतु समय के साथ सामाजिक संरचना में अनेक प्रकार की विषमताएँ भी विकसित हुईं। वर्ण व्यवस्था का कठोर स्वरूप, जातिगत ऊँच–नीच, स्त्रियों की सीमित सामाजिक स्थिति तथा धार्मिक कर्मकाण्डों की जटिलता ने समाज में असंतुलन उत्पन्न किया। ऐसी परिस्थितियों में अनेक श्रमण परंपराओं का उदय हुआ, जिनमें बौद्ध धर्म सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

गौतम बुद्ध ने मानव जीवन को दुःखमय मानते हुए उसके समाधान का मार्ग प्रस्तुत किया। किन्तु उनकी शिक्षाएँ केवल आध्यात्मिक मुक्ति तक सीमित नहीं थीं। उन्होंने सामाजिक जीवन में समानता, करुणा और नैतिकता को भी अत्यधिक महत्व दिया। बुद्ध का चिंतन मानव–केंद्रित था। वे किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके जन्म, जाति या सामाजिक स्थिति के आधार पर नहीं, बल्कि उसके कर्म और आचरण के आधार पर करते थे।[5]

बुद्ध का यह दृष्टिकोण उस समय की सामाजिक व्यवस्था के लिए अत्यंत क्रांतिकारी था। उनके विचारों ने समाज के उपेक्षित वर्गों को नई आशा प्रदान की तथा सामाजिक समरसता की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यही कारण है कि बौद्ध धर्म को केवल धार्मिक आंदोलन न मानकर सामाजिक परिवर्तन का आंदोलन भी कहा जाता है।

सामाजिक समरसता दो शब्दों 'सामाजिक' और 'समरसता' से मिलकर बना है। सामाजिक का संबंध समाज से है तथा समरसता का अर्थ है समान भाव, सामंजस्य और परस्पर सहयोग। इस प्रकार सामाजिक समरसता का तात्पर्य समाज में रहने वाले विभिन्न व्यक्तियों एवं समूहों के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंधों की स्थापना से है। समरस समाज में किसी व्यक्ति के साथ उसके जन्म, जाति, धर्म, लिंग या आर्थिक स्थिति के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता। सभी व्यक्तियों को समान सम्मान और अवसर प्राप्त होते हैं। सामाजिक समरसता का आधार न्याय, समानता, सहिष्णुता और बंधुत्व की भावना होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक समरसता सामाजिक एकता की वह स्थिति है जिसमें समाज के विभिन्न घटक परस्पर विरोध के स्थान पर सहयोग की भावना से कार्य करते हैं। यह सामाजिक पूँजी को मजबूत बनाती है तथा सामूहिक विकास को संभव बनाती है।[6]

भारतीय परंपरा में भी सामाजिक समरसता के अनेक आदर्श मिलते हैं। उपनिषदों में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना तथा तथा बौद्ध धर्म में 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का सिद्धांत इसी दिशा की अभिव्यक्ति है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण संक्रमण काल था। इस समय सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हो रहे थे। नगरों का विकास हो रहा था, व्यापार और वाणिज्य का विस्तार हो रहा था तथा नए सामाजिक वर्ग उभर रहे थे। किंतु दूसरी ओर धार्मिक जीवन कर्मकाण्डों और यज्ञों की जटिलताओं में उलझ गया था।

वर्ण व्यवस्था धीरे–धीरे कठोर होती जा रही थी। सामाजिक प्रतिष्ठा जन्म से निर्धारित मानी जाने लगी थी। निम्न वर्गों और स्त्रियों को अनेक अधिकारों से वंचित रखा गया था। धार्मिक ज्ञान और अनुष्ठानों पर कुछ विशेष वर्गों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। परिणामस्वरूप समाज के व्यापक वर्गों में असंतोष की भावना उत्पन्न हुई। इसी पृष्ठभूमि में गौतम बुद्ध का उदय हुआ। बुद्ध ने न तो ईश्वरवाद को सामाजिक जीवन का आधार बनाया और न ही जन्मगत श्रेष्ठता को स्वीकार किया। उन्होंने मानव के नैतिक आचरण को सबसे अधिक महत्व दिया। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के माध्यम से श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है।[7]

बुद्ध की शिक्षाओं का प्रभाव समाज के विभिन्न वर्गों पर पड़ा। व्यापारी, किसान, शिल्पकार, स्त्रियाँ तथा तथाकथित निम्न जातियों के लोग बड़ी संख्या में बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित हुए। इसका प्रमुख कारण यह था कि बौद्ध धर्म ने उन्हें सम्मान, समानता और आध्यात्मिक उन्नति का अवसर प्रदान किया। बुद्ध का यह दृष्टिकोण

सामाजिक समरसता की स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। उन्होंने समाज को यह संदेश दिया कि मनुष्य की पहचान उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके नैतिक चरित्र और कर्मों से होती है।

बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत सामाजिक समरसता की भावना को प्रत्यक्ष रूप से पुष्ट करते हैं। चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, मध्यम मार्ग, करुणा, मैत्री और अहिंसा जैसे सिद्धांत केवल व्यक्तिगत मुक्ति के साधन नहीं हैं, बल्कि सामाजिक जीवन के लिए भी अत्यंत उपयोगी हैं। चार आर्य सत्यों में बुद्ध ने मानव जीवन के दुःख तथा उसके कारणों का विश्लेषण किया। उन्होंने बताया कि तृष्णा, आसक्ति और अज्ञान ही दुःख के मूल कारण हैं। जब व्यक्ति लोभ, द्वेष और मोह से मुक्त होता है, तब उसके भीतर करुणा और सहानुभूति का विकास होता है। यह स्थिति सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक है।

अष्टांगिक मार्ग में सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका, सम्यक प्रयास, सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि का उल्लेख मिलता है। ये सभी तत्व व्यक्ति के नैतिक विकास के साथ–साथ सामाजिक उत्तरदायित्व को भी सुदृढ़ करते हैं। विशेष रूप से सम्यक वाक् और सम्यक कर्म सामाजिक जीवन में सौहार्द की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण हैं। असत्य, चुगली, कठोर वचन और हिंसक व्यवहार सामाजिक विघटन को जन्म देते हैं, जबकि सत्य, संयम और सद्भाव समाज को एकजुट करते हैं। बुद्ध द्वारा प्रतिपादित करुणा और मैत्री की भावना सामाजिक समरसता का मूल आधार है। करुणा व्यक्ति को दूसरों के दुःख के प्रति संवेदनशील बनाती है तथा मैत्री सभी के प्रति सद्भाव विकसित करती है। जब समाज का प्रत्येक सदस्य दूसरों के कल्याण को भी अपने कल्याण का हिस्सा मानने लगे, तब वास्तविक सामाजिक समरसता स्थापित होती है।[8]

महात्मा बुद्ध की दृष्टि

महात्मा बुद्ध के अनुसार सदियों से चली आ रही कुप्रथाओं, अंधविश्वासों, देवी–देवताओं तथा ग्रंथों पर बिना सोचे समझे उनके अनुसार व्यवहार एवं आचरण करना गुलामी है तथा इन सभी का अपने विवेक के आधार पर खण्डन करना और स्वयं को जो उचित लगे उसे स्वीकारना स्वतंत्रता है। महात्मा बुद्ध का मानना था कि सुनी–सुनायी बातों एवं परम्परा पर विश्वास मत करो। हमारे पूर्वज एवं समाज के लोग किसी बात को सत्य मानते हैं इसलिए तुम भी इसको सत्य मानो या तुम्हारे धर्म गुरु हमेशा सत्य बोलते हैं तथा उन्होंने ही यह बात कही है इसलिए मत मानो। तुम अपनी स्वतंत्र बुद्धि की कसौटी पर बिना किसी दबाव के उस बात को कसो और अगर वह तुम्हें ठीक एवं विवेकयुक्त लगे तभी मानो।[9] बौद्ध दर्शन के तीन नियम हैं– (1)ईश्वर का अस्तित्व नहीं है, (2)कोई नित्य वस्तु नहीं है, (3)प्रत्येक चीज का निर्माण कार्य–कारण भाव से होता है। इन तीनों नियमों को बौद्ध धर्म में जगह इसलिए दिया गया है कि व्यक्ति कहीं परलोकवादी न बन जाए बल्कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं प्रयत्नशील रहे। महात्मा बुद्ध हमेशा समानता, स्वतंत्रता के समर्थक रहे हैं। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने विश्वास एवं क्षमता के अनुरुप अपने जीवन का निर्वहन करे। वे व्यक्ति की स्वतंत्रता को हनन करने वाली उस हर बात का खण्डन करते हैं चाहे वह धार्मिक हो या सामाजिक। उनकी उक्ति है– अप्प दिपो भवः।[10] महात्मा बुद्ध का मानना था कि वे मोक्ष प्रदाता नहीं है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को स्वयं अपने प्रयास से मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए।

महात्मा बुद्ध के इस उक्ति का कबीर भी समर्थन करते हुए कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रकार के अलौकिक शक्ति पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। विवेकानन्द ने भी बुद्ध की स्वतंत्रता के विचार का समर्थन करते हुए कहते हैं कि स्वतंत्रता ही आत्मा की मूल विशिष्टता है, आत्मा कभी बन्धनग्रस्त नहीं होता है। उसका बन्धनग्रस्त होना एकमात्र प्रतिति है एक भ्रांति है। आत्मा का मूल स्वभाव स्वतंत्रता ही है, स्वतंत्रता की अनुमति आत्मा का चरम लक्ष्य है।

अहिंसा भारतीय आचारशास्त्र की आधारशिला है। अहिंसा का साधारण अर्थ है किसी भी जीव को कष्ट न पहुँचाना। इसका पालन मन, वचन, कर्म से होना चाहिए। प्रो. मैत्र के अनुसार यह सभी सद्गुण है, यह रागी सद्गुणों एवं श्रेष्ठताओं की जननी है। अहिंसा का विचार बौद्ध धर्म का एक मुख्य बिन्दु है। बुद्धकालीन समाज में पूजा–पाठ एवं कर्मकाण्ड कई दिन तक चलते रहते थे। इस क्रम में अनेकों जीवों की बलि के नाम पर निर्मम हत्या कर दी जाती थी। महात्मा बुद्ध ने इन यज्ञों एवं बलि की कुप्रथाओं का घोर विरोध किया। इसके अतिरिक्त भगवान बुद्ध पशुओं के व्यापार, मानव का व्यापार एवं विषय तथा मदिरा के व्यापारों का जोरदार विरोध किया क्योंकि इन सभी से हिंसा को बढ़ावा मिलता है।[11] बौद्ध धर्म के पंचशील सिद्धांत के अंतर्गत पाणतिपात वेरमणि सिक्खा पदम समाधियामी[12] बोलकर जीवनमात्र की हिंसा ना करने की शपथ ली जाती है। महात्मा बुद्ध कहना था कि यदि पशु बलि धर्म है तथा जीव हत्या करने वाला धार्मिक है तो फिर संसार में अधर्मी और कसाई कौन है? महात्मा बुद्ध के इन विचारों का कबीरदास ने भी समर्थन किया है तथा उन्होंने हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों धर्म के अनुयायियों से धर्म के नाम पर जीवों की बलि नहीं चढ़ाने को कहा है कबीर का मानना है कि अगर तुम लोग जीवों के प्रति दया, करुणा का भाव नहीं जानते ही तो तुम लोगों का धर्मगुरु बनाना व्यर्थ है।

गौतम बुद्ध का मानना था कि हिंसा (युद्ध) से हिंसा (युद्ध) को बढ़ावा मिलता है। क्योंकि लड़ाई में पराजित व्यक्ति अपनी हार का बदला लेने के लिए हर पल घात लगाए मौके की तलाश में रहता है। इसलिए युद्ध का जवाब प्रतियुद्ध या हिंसा का जवाब प्रतिहिंसा ही होता है। महात्मा बुद्ध का मानना था कि जिस प्रकार हिंसा का शक्ति घृणा और द्वेष है ठीक उसी प्रकार अहिंसा का प्रेम और मैत्री है। हिंसक व्यक्ति कुछ हद तक हिंसा कर सकता है लेकिन जो अहिंसावादी है अर्थात् अहिंसा व्रत का पालन करने वाला वह इसका पालन करते हुए कभी भी नहीं थकता है वह निरंतर संयमी बनकर शांतिपूर्ण अपना जीवन व्यतीत करता है। इसी कारण महात्मा बुद्ध कहते हैं कि क्रोध या गुस्से को प्यार से बुराई को भलाई से जीतो।[13] नफरत करने वाले के प्रति भी प्यार से व्यवहार करने वाला हमेशा सुखपूर्वक जीता है।

सुसुखं वतं जीवाम वेरिनेस, अवरिनो।
वरिनेस मनुस्सन विहसम, अवेरिनी।।[14]

गौतम बुद्ध का मानना है कि व्यक्ति को अपने और पराए का भेदभाव नहीं करना चाहिए। हम और तुम एक ही हैं जब ऐसा मानोगे तभी समाज से वैर, घुणा, द्वेष जैसी कुप्रवृतियों का लोप हो पाएगा। इस प्रकार आदर्श एवं अहिंसा समाज के लिए अहिंसा प्रेम भाव आवश्यक तत्व हैं।

सत्य का अर्थ है झूठ या असत्य वचन से विरत रहना, यह मन का सात्विक भाव है। व्यक्ति अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार से अपने मुख द्वारा वयक्त करता है तो यह सत्य है। इस विचार से गौतम बुद्ध द्वारा दी गयी सारी शिक्षाएँ सत्य पर टिकी है। गौतम बुद्ध द्वारा बताए गए शीलों में से एक शील है कि मैं सदैव सत्य बोलूँगा, झूठ नहीं बोलूँगा। बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया है बुद्धि विवेक के द्वारा सत्य बोलो, लेकिन प्रत्येक दशा में सत्य ही बोलो। चाहे कोई भी परिस्थिति हो झूठ मत बोलो तथा सत्य के पथ पर टिके रहो। चाहे सत्य बोलने में जितना भी खतरा हो लेकिन व्यक्ति को अन्य के हित साधन के लिए सत्य बोलना चाहिए।[15] महात्मा बुद्ध असत्य वचनों से हमेशा दूर रहते थे तथा सत्य वचनों से संबंधित विश्वास भरी वाणी बोला करते थे। इसी कारण गौतम बुद्ध को ही सत्य कहा गया है। महात्मा गाँधी के अनुसार सत्य बोलने का अर्थ है, वही बोलना जो शुभ एवं उचित हो। सत्य बोलने का यह अर्थ नहीं है कि कटु, अश्लील, भद्दे वचन बोले। सत्य की उपयोगिता है– सर्वसाधारण का हित। मनु की उक्ति भी है–सत्यम् ब्रुयात न ब्रुयात् सत्यम् अप्रियम अर्थात् हमें कटु सत्य नहीं बोलना चाहिए।

गौतम बुद्ध ने मनुष्य को इस संसार के सबसे बड़े सत्य से अवगत करवाया है वह है– मानव शरीर की नश्वरता। उस समय प्रेम, लालच, लोभ से वशीभूत समाज स्वार्थी, लालची, हिंसक, धन प्रेमी, भ्रष्ट तथा भोगी बनकर अनैतिक कार्यों में डुबा हुआ था। ऐसे लोगों को मानव देह की वास्तविकता से परिचित कराकर महात्मा बुद्ध ने जागरूक करने का प्रयत्न किया। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में ही महात्मा बुद्ध ने कहा था कि श्मैं तुम्हें फिर से याद दिला रहा हूँ सभी संस्कार अनित्य है इसलिए अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगे रहो।[16]

समरसता गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म समरसतावादी धर्म है। इसी कारण महात्मा बुद्ध तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषमता को देखकर चुप नहीं रह सके तथा उनमें वैराग्य की भावना जागृत हुई। इसी कारण उन्होंने संन्यासी जीवन अपनाकर ऐसे धर्म की स्थापना की जो पूर विश्व में समरसता का संदेश के सके। उन्होंने एक ऐसे संघ की स्थापना की जहां सभी व्यक्ति समान हो चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, वर्ण, लिंग के क्यों न हो। गौतम बुद्ध के अनुसार समानता का अर्थ है समाज के सभी व्यक्तियों को अपने विकास के समान अवसर प्राप्त होना। सभी व्यक्ति समान है इसको समझाते हुए भगवान बुद्ध आश्वलायन ब्राह्मण से कहते हैं कि ब्राह्मण लोगों की कन्याएँ भी अन्य कन्याओं की भांति ऋतुमति तथा गर्भधारण करती है, बच्चे पैदा करती हैं, दूध पिलाती है और जिस प्रकार अन्य महिलाएं अपने बच्चे को गर्म से पैदा करती है। ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण के बच्चे भी पैदा होते हैं तो फिर है आश्वलायन ब्राह्मण लोग क्यों कहते हैं कि सिर्फ ब्राह्मण लोग ही श्रेष्ठ होते हैं? अन्य वर्ण के लोग नहीं।[17]

गौतम बुद्ध आगे कहते हैं कि हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई और शूद्र सभी के भीतर एक ही सत्ता का वास है तथा सभी का शरीर चर्म, हड्डी, मांस आदि से निर्मित है। इस प्रकार भौतिक या आध्यात्मिक दृष्टि से इनमें किसी भी प्रकार का कोई भेद नहीं। सद्धर्म–पुण्डरीक सूत्र की उक्ति है कि– कुम्हार एक ही मिट्टी से जिस प्रकार भिन्न–भिन्न तरह के बरतनों का निर्माण करता है ठीक उसी प्रकार मानवों का निर्माण एक ही पंचभूतों से हुआ है इसी कारण सभी मनुष्य समान है।इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि– मानव हमेशा स्वतंत्र तथा समान पैदा होते हैं तथा निरंतर इसी प्रकार रहते हैं इसलिए प्रत्येक मानव मानवतावादी दृष्टि से भी समान है।[18] विभिन्न धर्मों के आचार्यों ने भी कहा है कि– सभी मनुष्य एक ही परमात्मा की संतान है। महात्मा गाँधी भी इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं कि हम सभी उस एक सत्य की चिंगारियां हैं। शंकरचार्य के अद्वैतवाद में भी जीवों को मूलतः ब्रह्म रूप ही माना गया है। इस प्रकार सभी जीव समान हैं।

सेवा दुनिया इस बात की गवाह है कि गौतम बुद्ध में मानव सेवा की भावना कूट–कूट कर भरी थी। उन्होंने निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् अपने पिता शुद्धोदन से विनम्रपूर्वक कहा था कि– हे राजन् अब मैं किसी एक परिवार, वंश, समाज या किसी एक देश का पुत्र नहीं रह गया हूँ। विश्व के सम्पूर्ण जीव–जन्तु एवं प्राणीजन मेरे परिवार तथा सारी पृथ्वी मेरा घर है, अब मैं आपका पुत्र नहीं रह गया हूँ बल्कि अब मैं एक भिक्षु हूँ। मैंने अपने लिए एक सद्धर्म के मार्ग का चयन किया है। मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि मैं इस मार्ग पर चलते हुए समस्त प्राणियों की सेवा कर सकूँगा। महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों से कहा था कि जो भिक्षु, रोगियों, दुखियों की सेवा करता है वह मेरी सेवा करता है उसे यह मानकर चलना चाहिए। जो, भी भिक्षु मानव सेवा किए बगैर भिक्षु जीवन व्यतीत करते हैं मैं उसे राष्ट्र की सम्पत्ति का उपभोग करने वाला बेकार व्यक्ति मानता हूँ।[19] गौतम बुद्ध ने अपने अनुयायियों के अलावे गृहस्थ–जीवन जीने वाले लोगों को भी सेवा का महत्व बतलाया है। उनका कहना है कि हमारे अपने माता–पिता ही साक्षात् ब्रह्म हैं, देव हैं तथा आचार्य भी है। हमारे माता–पिता ने हमें पैदाकर हम पर बहुत बड़ा एहसान किया है, इसलिए हम सबों को अपने माता–पिता की पूजा अर्चना एवं सेवा करनी चाहिए। जो भी संतान ऐसा करता है उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। लेकिन जो संतान सामर्थ्य होने पर भी अपने बुढ़े माँ–बाप की सेवा नहीं करता है उसे बुद्ध के अनुसार पापी माना गया है। स्वयं गौतम बुद्ध अपने विषय में बताते हुए कहते हैं कि इस दुनिया में मेरे आने का उद्देश्य ही यह है कि गरीबों, लाचारों तथा दुखियों को अपना मित्र बनाना। गरीबों, असहायों, अनाथों एवं बूढ़ों की सेवा करना तथा अन्य लोगों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित करना।[20] इस प्रकार गौतम बुद्ध ने सेवा भाव को अत्यन्त महत्व देते हुए उसे मानव के सुखी जीवन का मार्ग बताया है।

बौद्ध धर्मशास्त्री धर्मानन्द कोसाम्बी का कहना है कि हमारे देश के नागरिकों में स्वयं कष्ट सहन करते हुए भी अन्य लोगों की सेवा करने की प्रेरणा महात्मा बुद्ध ने जगाई है। गौतम बुद्ध का कहना था कि जिस प्रकार व्यक्ति अपने माता–पिता, बच्चां एवं परिवार की सेवा करता है वैसे ही उसे समाज की भी सेवा करनी चाहिए। यदि उसे ऐसा करने में कष्ट भी होता है तो उसे सुखकर समझना चाहिए। उनके विचारों से प्रभावित होते हुए कबीर भी कहते हैं कि जिस घर या समाज में साधुओं की सेवा नहीं होनी, वह घर शमसान के समान है।

शील शील का साधारण अर्थ है बुरे कर्मों से दूर रहना तथा अच्छे कर्मों के प्रति सद्भावना रखना। इस प्रकार शील का सम्बन्ध सद्आचरण से है। भगवान् बुद्ध ने प्रज्ञा और शील को अत्यन्त महत्व दिया है, जहाँ प्रज्ञा का मतलब ज्ञान तथा विचार, लेकिन किसी भी ज्ञान का शील के बगैर कोई महतव नहीं है। जिस प्रकार सृष्टि पृथ्वी का आधार पृथ्वी है। ठीक उसी प्रकार धर्म के अन्तर्गत पूरे मानव जाति का आधारशीला है।[21] गौतम बुद्ध कहते हैं कि राजमहल में रहनेवाला कोई सम्राट हो, अत्यन्त घोर साधना करनेवाला कोई साधु हो अथवा कोई शक्तिशाली योद्धा शील के बिना उनका जीवन एकदम व्यर्थ है। ठीक उस व्यर्थ फलदार पेड़ की तरह जो फल–फूल से लदा हुआ किसी के काटने पर जमीन पर गिरा हुआ है। उनका कहना है कि शीलहीन मानव आचारहीन होता है. बुरी सोच रखनेवाला, भावनाहीन तथा प्रज्ञाहीन भी होता है। ऐसे लोगों को धर्म की शिक्षा नहीं देनी चाहिए[22] सम्पूर्ण बौद्ध धर्मग्रंथ शील की प्रशंसा से भरा हुआ है। भगवान बुद्ध ने कहा–

दान ददन्दु श्रद्धाय
शीलं रखन्ति समपदा

शील की प्रशंसा करते हुए संस्कृत साहित्य में लिखा गया है शीलं परमं भूषणम् अर्थात् शील से बड़ा कोई आभूषण नहीं है। मानव का स्वभाव, उसका आचरण, सद्व्यवहार ही उसका आभूषण है। कबीर ने भी शील की प्रशंसा करते हुए कहा है कि शीलवान सबसे बड़ा है, शील सभी आभूषणों की खान है, तीनों लोगों की सम्पत्ति, शील में ही सन्निहित है।

शीलवन्त सब ते बड़ा, सर्व रतन की खानि।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आनि।।[23]

पंचतंत्र में भी शील की चर्चा करते हुए बताया गया है कि विभूषणं शील समं न चान्यत इसका तात्पर्य है कि शील के जैसा कोई अन्य आभूषण नहीं है जिस व्यक्ति के पास शील है वह अपने आवरण एवं सद्व्यवहार से सबका दिल जीत सकता है।

संगति व्यक्तित्व के विकास के लिए गौतम बुद्ध ने सत्संगति को विशेष महत्व दिया है। अंगुत्तर निकाय में बताया गया है कि पापी व्यक्ति के संगति से अच्छे व्यक्ति के कुशल कर्मों का भी क्षय हो जाता है तथा उसमें बुरे कर्म का प्रवेश हो जाता है।[24] इसलिए कहा गया है कि सामाजिक जीवन व्यतीत करने के क्रम में अगर व्यक्ति को अपने से श्रेष्ठ या अपने से अच्छा मित्र नहीं मिले तो उस व्यक्ति को संयमपूर्ण अकेले ही जीवन व्यतीत करना चाहिए। परंतु मूर्ख व्यक्ति की संगति नहीं करनी चाहिए। सिद्ध पुरुषों एवं ज्ञानी की ही संगति करें, ऐसे ही व्यक्तियों की सेवा करे, पूजा करे यही सर्वोत्तम मंगलकारी है।[25] बुद्ध कहते हैं कि जिस प्रकार लोहे का सहारा

लेकर व्यक्ति नदी को पार नहीं कर सकता है। ठीक उसी प्रकार बुरी संगति का सहारा लेकर व्यक्ति मोहमाया रूपी इस सांसारिक भंवर को पार नहीं कर सकता।[26] मोहमाया से युक्त होने पर मानव ह्रदय कुप्रवृतियों से भर जाता है तथा उचित अनुचित का भेद नहीं रह पाता है।[27] गौतम बुद्ध ने अपने अनुयायियों को उपदेश देते हुए कहा है कि – बुद्धिमान व्यक्ति पलभर भी ज्ञानी व्यक्ति की सुसंगति में रहे तो वह सद्धर्म को जान लेता है। जैसे– जीभ स्वाद को जान लेती है।[28] कबीर भी सत्संगति का महत्व बताते हुए कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति आधा घड़ी भी सिद्ध पुरुष के साथ सुसंगति करता है तो उसके लाखों बुरे कर्मों का निवारण हो जाता है। यथा–

एक घड़ी आध घड़ी, आधी हूँ सो आध।
कबीर संगति साधु की, कटै कोटि अपराध।।[29]

परोपकार गौतम बुद्ध ने परोपकार की भावना से प्रेरित होकर ही दुःख रूपी संसार को देखकर उनसे मुक्ति दिलाने के लिए गृहस्थ जीवन का त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया था। बोधि प्राप्ति होने पर उन्होंने बौद्ध संघ की स्थापना की। जिसका संचालन गृहस्थों के द्वारा दिया गया भिक्षा, दान के द्वारा होता था। इन्हीं सब उपकारों को ध्यान रखते हुए महात्मा बुद्ध ने अपने अनुयायियों को बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय का संदेश लेकर संसार भ्रमण करने को कहा था। उनका कहना था कि जो मानव दूसरों के उपकार को याद नहीं रखता है अर्थात् भूल जाता है वह दुष्ट मनुष्य है और जो दूसरों के द्वारा किये गये एहसान को याद रखता है वह अच्छा मनुष्य है।[30] दया, करुणा, ममता से युक्त मनुष्य ही निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। भगवान बुद्ध अपने अनुयायियों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि मानव को यह हर पल याद रखना चाहिए कि उसके अपने कार्य एवं व्यवहार से उसके खुद का एवं दूसरों का अहित न हो। वे अपने अनुयायियों को हमेशा कहा करते थे कि एक–दूसरे का सहारा बनो, एक दूसरे के सुख–दुःख में साथ निभाओ जिससे कि आपस में भाईचारा एवं प्रेम बनी रहे।[31] मैत्री का अर्थ है सभी जीवों के लिए मातृभावना का होना यह सिर्फ अपने मित्रों के लिए ही नहीं बल्कि दुश्मनों तक के लिए, मानवों के प्रति ही नहीं बल्कि सभी जीवों के प्रति भी।[ष] बोधिसत्व प्रापत व्यक्ति तो स्वयं कों कष्ट देकर भी अन्य का हित करते हैं। बौद्ध धर्म के बलि प्रथा का विरोध करने के पीछे यही मैत्री, करुणा तथा प्रेम की भावना है। इन्हीं सब मूल्यों की वजह से गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म बन गया। परोपकार एक ऐसा गुण है जो मनुष्यों को जानवरों से अलग कर देवताओं की श्रेणी में ला देता है। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया के पीछे भी परोपकार की भावना निहित है।[32]

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि महात्मा बुद्ध ने भिक्षुओं एवं समाज के अन्य लोगों को जिन मूल्यों को अपनाने का उपदेश दिया है वे समाज के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। जिन पर चलकर एक आदर्श समाज का निर्माण हो सकता है, क्योंकि जब तक व्यक्ति का आंतरिक आचरण शुद्ध नहीं होगा तब तक उसका बाह्य आचरण भी शुद्ध नहीं हो सकता है। इसी कारण बुद्ध ने पहले व्यक्ति के आंतरिक व्यवहार सुधारने वाली मूल्यों का उपदेश दिया तथा फिर सामाजिक मूल्यों का। इस प्रकार उपरोक्त बताए गए मूल्य व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास के अलावा उसका सामाजिक विकास भी करते हैं। वर्तमान समय में इन मूल्यों को अपनाया जाये तो एक सुसंस्कृत एवं सभ्य समाज का निर्माण संभव होगा जो की सामाजिक समरसता को स्थापित करेगा।

सन्दर्भ

1. अम्बेडकर,डॉ. भीमराव. बुद्ध और उनका धम्म,सिद्धार्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2014, पृ. 45–47
2. सांकृत्यायन,राहुल. बौद्ध दर्शन,किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ. 112–115
3. सांकृत्यायन,राहुल. बौद्ध दर्शन,किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ. 112–115
4. भारतीय दर्शन, भाग–1, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2010, पृ. 287–292.
5. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, गोविन्द चन्द्र पाण्डे, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2005, पृ. 76–81.
6. धम्मपद, अनुवाद भिक्षु धर्मरक्षित, महाबोधि सभा प्रकाशन, सारनाथ, 2012, यमकवग्ग, श्लोक 1–2, पृ. 3–4.
7. बुद्ध और उनका धम्म, डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर, सिद्धार्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 121–125.
8. अंगुत्तर निकाय, अनुवादरू भदन्त आनन्द कौसल्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, खंड–1, 2007, पृ. 98–101.
9. अंगुत्तर निकाय, तीसरा निपात, महावग्गो, सरभसुत्त
10. कबीर खोज– संपा. राजकिशोर, पृ. 196–197
11. भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन, संपा. एस.एस. गौतम, लेखः व्यापारियों को बुद्ध संदेश भिक्षु अश्वघोष, पृ. 86
12. बौद्धचर्या–विधि–भिक्षु धर्मरहित, पृ. 15
13. धम्मपद 291
14. वही, पद–197
15. बौद्ध धर्म का सार पी. लक्ष्मी नरसू, पृ. 66
16. बुद्ध और उनका धम्म– डॉ. बी.आर. अंबेडकर, अनु. म.आ. कौसल्यायन, पृ. 43

17. कबीर दोहावली (सटीक) श्री महेन्द्र कुमार जैन, दोहा–16
18. बौद्ध धर्म का सार पी. लक्ष्मी नरसू, पृ. 93
19. बुद्ध विचारः मार्क्सवादी दृष्टिक्षेप – संपा. राहुल सांकृत्यायन। देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, पृ.1
20. भगवान बुद्ध और उनका धर्म– अनु. भदंत आ. कौसल्यायन, पृ. 234
21. बुद्ध चरितम (भाग–2) महन्त श्रीरामचन्द्रदास शास्त्री, पृ. 94
22. विनयपिटक अनु. राहुल सांकृत्यायन, पृ. 148
23. कबीरः एक विवेचन, डॉ. सरनाम सिंह शर्मा, पृ. 179
24. अंगुत्तर निकाय, प्रथम निपात्त विरियारम्मवग्गो
25. सुतनिपात, चूलवग्ग, हि रिसुत
26. कबीर ग्रंथवली, कुसंगति कौ अंग, साखी–2
27. संत कबीर, साखी–121
28. धम्मपदं, गाथा–61
29. संत कबीर और उनका दर्शन, डॉ. रामाश्रय दास ब्रह्मचारी, पृ. 212
30. अंगुत्तर निकाय, द्वितीय निपात, समचित्तक वग्गो
31. बुद्ध और उनका धर्म अनु. भदंत आ. कौसल्यायन, पृ. 101
32. श्रमण विद्या–संपा रमाशंकर त्रिपाठी लेख महाकरुणा के. अंगरुप लाहुली, पृ. 89

◀◀ ▶▶

नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विकास बनाम सुरक्षा दृष्टिकोणः बिहार का एक राजनीतिक विश्लेषण

डॉ. राजेश कुमार*

सारांश

नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में नीति-निर्माण का एक स्थायी विवाद यह रहा है कि राज्य को हिंसात्मक उग्रवाद से निपटने के लिए विकास को प्राथमिकता देनी चाहिए या सुरक्षा-आधारित उपायों को। बिहार का अनुभव इस द्वंद्व को सरल उत्तरों से बाहर ले जाता है। यहाँ नक्सलवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि भूमि-संबंधी असमानताओं, जाति-आधारित प्रभुत्व, ग्रामीण गरीबी, प्रशासनिक दूरी, न्यायिक विलंब और स्थानीय सत्ता-संघर्षों से निर्मित हुई। दूसरी ओर, नक्सलवादी हिंसा ने नागरिक जीवन, लोकतांत्रिक संस्थाओं, सड़क-निर्माण, विद्यालयों, पंचायतों और प्रशासनिक पहुँच को बाधित भी किया। अतः केवल विकास-प्रधान या केवल सुरक्षा-प्रधान दृष्टिकोण, दोनों अपने-अपने रूप में अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का केंद्रीय तर्क है कि बिहार में नक्सलवाद-रोधी नीति की सफलता विकास और सुरक्षा को प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि परस्पर-निर्भर नीति-आयाम के रूप में देखने पर निर्भर करती है। सुरक्षा राज्य की वैधानिक उपस्थिति और नागरिकों की भय-मुक्ति सुनिश्चित करती है; विकास अवसर, अधिकार और राज्य पर विश्वास का आधार बनाता है; तथा शासन इन दोनों को स्थानीय न्याय, जवाबदेही और सहभागी नागरिकता से जोड़ता है। हाल के वर्षों में बिहार में हिंसात्मक घटनाओं का संकुचन और विकासात्मक संसाधनों का विस्तार यह संकेत देता है कि समग्र दृष्टिकोण नीति-स्तर पर प्रभावी रहा है, किंतु बहुआयामी गरीबी और ऐतिहासिक असमानताओं के कारण विकास को शांति-निर्माण की दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में समझना अभी भी आवश्यक है।

मुख्य शब्द: नक्सलवाद, वामपंथी उग्रवाद, विकास, सुरक्षा, बिहार, ग्रामीण राजनीति, राज्य क्षमता, आंतरिक सुरक्षा।

1. प्रस्तावना

भारतीय राजनीति में नक्सलवाद का प्रश्न आरंभ से ही दो भिन्न व्याख्याओं के बीच स्थित रहा है। एक व्याख्या इसे राज्य-विरोधी हिंसा, संवैधानिक व्यवस्था को चुनौती और आंतरिक सुरक्षा का संकट मानती है। दूसरी व्याख्या इसे भूमि-अन्याय, सामाजिक अपमान, गरीबी, राज्य की अनुपस्थिति और लोकतांत्रिक संस्थाओं की सीमाओं की प्रतिक्रिया के रूप में देखती है। दोनों व्याख्याएँ आंशिक सत्य रखती हैं, किंतु दोनों में से कोई भी अकेले बिहार की जटिलता को नहीं समझा सकती। बिहार में नक्सलवादी राजनीति ने जिन क्षेत्रों में सामाजिक आधार बनाया, वे केवल प्रशासनिक रूप से पिछड़े क्षेत्र नहीं थे; वे ग्रामीण सत्ता-संबंधों, जाति-वर्ग असमानताओं और स्थानीय हिंसा की लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया से निर्मित क्षेत्र थे।[1]

"विकास बनाम सुरक्षा" का द्वंद्व नीति-चर्चा में इसलिए उभरता है क्योंकि उग्रवाद-प्रभावित क्षेत्रों में तत्काल समस्या हिंसा की होती है, जबकि दीर्घकालीन समस्या वैधता, न्याय और अवसर की होती है। यदि राज्य केवल विकास योजनाएँ भेजता है लेकिन उग्रवादी हिंसा के कारण सड़क, विद्यालय, बैंक, स्वास्थ्य केंद्र और प्रशासनिक कार्यालय काम नहीं कर पाते, तो विकास की नीति विफल हो जाती है। यदि राज्य केवल सुरक्षा

---

* स्नातकोत्तर, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

[1] योजना आयोग, भारत सरकार, *उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास संबंधी चुनौतियाँ: विशेषज्ञ समूह की रिपोर्ट* (नई दिल्ली, 2008)।

बलों की तैनाती बढ़ाता है और स्थानीय समाज की शिकायतों को अनसुना करता है, तो शांति भय-आधारित बन सकती है, वैधता-आधारित नहीं। इसलिए वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि विकास पहले हो या सुरक्षा पहले; वास्तविक प्रश्न यह है कि किस प्रकार सुरक्षा को लोकतांत्रिक और विकास को न्यायपूर्ण बनाया जाए।

बिहार का अध्ययन इस बहस में विशेष योगदान देता है। राज्य में वामपंथी उग्रवाद ने उत्तर और दक्षिण के भूगोल में समान रूप नहीं लिया। मध्य और दक्षिण बिहार, विशेषकर भोजपुर, गया, औरंगाबाद, जहानाबाद, अरवल, जमुई और आसपास के क्षेत्र, भूमि-संबंधों और जातीय प्रभुत्व की तीखी संरचनाओं के कारण नक्सलवादी लामबंदी के लिए उपजाऊ बने। इन क्षेत्रों में नक्सलवाद केवल आर्थिक वंचना का परिणाम नहीं था, बल्कि सामाजिक गरिमा, मजदूरी, भूमि, न्याय और राजनीतिक भागीदारी की माँगों से जुड़ा हुआ था।[2]

यह लेख बिहार में विकास और सुरक्षा के संबंध को राजनीतिक दृष्टि से समझने का प्रयास करता है। लेख का तर्क है कि नक्सलवाद-रोधी नीति का मूल्यांकन केवल हिंसा की कमी या योजनागत व्यय से नहीं किया जा सकता। इसे नागरिकता, राज्य-वैधता, न्यायिक पहुँच, सामाजिक समावेशन और स्थानीय शासन की गुणवत्ता के संदर्भ में पढ़ना होगा। इस उद्देश्य से लेख आधिकारिक आंकड़ों, नीति दस्तावेजों और विद्वानों के अध्ययनों के आधार पर बिहार के अनुभव की व्याख्या करता है।

2. विकास बनाम सुरक्षाः अवधारणात्मक बहस

विकास-प्रधान दृष्टिकोण का आधार यह है कि उग्रवाद की जड़ें गरीबी, बेरोजगारी, भूमि-असमानता, सामाजिक बहिष्कार और राज्य की विकासात्मक विफलता में होती हैं। इस दृष्टि के अनुसार यदि सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, बैंकिंग, संचार और भूमि-अधिकार की स्थिति सुधरे, तो उग्रवादी संगठनों की सामाजिक अपील स्वतः घट जाएगी। विकास राज्य को केवल नियंत्रणकारी संस्था नहीं, बल्कि अवसर और अधिकार देने वाली संस्था के रूप में स्थापित करता है। यह नागरिकों को यह अनुभव कराता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था उनके जीवन में ठोस परिवर्तन ला सकती है।

सुरक्षा-प्रधान दृष्टिकोण का आधार यह है कि सशस्त्र उग्रवाद सामान्य लोकतांत्रिक राजनीति नहीं है; वह हिंसा के माध्यम से राज्य की वैधानिक सत्ता, नागरिक स्वतंत्रता और विकासात्मक प्रक्रिया को बाधित करता है। यदि हिंसक समूह प्रशासन, सड़क-निर्माण, विद्यालयों, चुनाव, पुलिस थानों और जनप्रतिनिधियों को लक्ष्य बनाते हैं, तो पहले नागरिकों को भय से मुक्त करना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण के अनुसार बिना सुरक्षा के विकास योजनाएँ उग्रवादी नियंत्रण, भय, वसूली और बाधा में फँस सकती हैं।

दोनों दृष्टिकोणों की सीमा तब स्पष्ट होती है जब वे एक-दूसरे को नकारते हैं। विकासवादी दृष्टिकोण यदि हिंसा की वास्तविकता को कम आँकता है, तो वह नागरिकों की तत्काल सुरक्षा और राज्य के वैध बल-एकाधिकार की आवश्यकता को अनदेखा करता है। सुरक्षावादी दृष्टिकोण यदि सामाजिक शिकायतों को केवल "आपराधिकता" या "विद्रोह" कहकर अस्वीकार करता है, तो वह उग्रवाद की पुनरुत्पत्ति के कारणों को जीवित रखता है। इसलिए लोकतांत्रिक राज्य के लिए आवश्यक है कि वह सुरक्षा को अधिकार-विरोधी और विकास को सुरक्षा-विरोधी न बनाए।

भारत सरकार की वामपंथी उग्रवाद नीति-भाषा में भी यह समन्वित दृष्टिकोण स्पष्ट है। राष्ट्रीय नीति और कार्य-योजना, 2015 को सुरक्षा, विकास, अधिकारों और स्थानीय समुदायों की भागीदारी से जुड़े बहुआयामी

[2] बेला भाटिया, "मध्य बिहार में नक्सलवादी आंदोलन," *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली* 40, अंक 15 (2005): 1536-1549।

ढाँचे के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[3] इस नीति का बुनियादी निहितार्थ यह है कि वामपंथी उग्रवाद न तो केवल पुलिस-समस्या है और न केवल गरीबी-समस्या; यह राज्य और समाज के संबंध की राजनीतिक समस्या है। बिहार में भी नीति-व्यवस्था की उपलब्धि इसी बात पर निर्भर करती है कि वह इन आयामों को किस प्रकार साथ लेकर चलती है।

3. बिहार में नक्सलवाद की सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि

बिहार में नक्सलवाद की जड़ों को समझने के लिए ग्रामीण समाज की सत्ता-रचना पर ध्यान देना आवश्यक है। यहाँ कई इलाकों में भूमि का स्वामित्व ऐतिहासिक रूप से सीमित समुदायों के हाथों में केंद्रित रहा, जबकि भूमिहीन मजदूरों और दलित समुदायों ने श्रम, अपमान और असुरक्षा की स्थितियों का सामना किया। मजदूरी, बटाई, सामाजिक सम्मान, सार्वजनिक स्थानों तक पहुँच और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न अनेक बार हिंसक संघर्षों में बदले। नक्सलवादी संगठनों ने इन्हीं संघर्षों को वर्ग-संघर्ष और सामाजिक मुक्ति की भाषा में रूपांतरित किया।

बेला भाटिया का मध्य बिहार पर अध्ययन यह बताता है कि नक्सलवादी आंदोलन को स्थानीय समाज से कटे हुए बाहरी आंदोलन के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता। उसके अनेक आधार ग्रामीण उत्पीड़न और न्याय-वंचना के अनुभवों से निर्मित हुए।[4] इस बात का यह अर्थ नहीं है कि नक्सलवादी हिंसा वैध हो जाती है; इसका अर्थ यह है कि राज्य को उस सामाजिक अनुभव को समझना होगा जिसने हिंसात्मक विचारधारा को राजनीतिक स्थान दिया। यदि किसी नागरिक को कानून, थाना, अदालत, पंचायत और प्रशासन से न्याय मिलने की आशा न हो, तो वह वैकल्पिक सत्ता की ओर आकर्षित हो सकता है।

जॉर्ज कुन्नाथ ने ग्रामीण बिहार में नक्सलवाद से जुड़े व्यक्तियों की राजनीतिक आत्मकथाओं के माध्यम से दिखाया कि अनेक लोगों के लिए यह आंदोलन सम्मान, प्रतिरोध और सामूहिक पहचान का माध्यम बना।[5] यह संकेत करता है कि नक्सलवाद की अपील केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक-राजनीतिक भी थी। गरीब और वंचित समुदायों के लिए प्रश्न यह था कि वे अपने को नागरिक के रूप में अनुभव करते हैं या केवल स्थानीय प्रभुत्व के अधीन श्रमिक के रूप में। जहाँ राज्य ने नागरिकता की अनुभूति नहीं दी, वहाँ आंदोलन ने सम्मान की वैकल्पिक भाषा प्रदान की।

इसके समानांतर यह भी ध्यान रखना होगा कि बिहार में नक्सलवादी राजनीति का इतिहास हिंसा, प्रतिहिंसा और निजी सेनाओं की राजनीति से जुड़ा रहा है। ग्रामीण समाज में प्रभुत्वशाली समूहों द्वारा संगठित हिंसा और नक्सलवादी हिंसा ने मिलकर नागरिक जीवन को असुरक्षित बनाया। इस चक्र में राज्य की विफलता केवल यह नहीं थी कि वह उग्रवाद को रोक नहीं सका, बल्कि यह भी थी कि वह कमजोर नागरिकों को प्रभुत्वशाली हिंसा से बचाने में कई बार पर्याप्त विश्वसनीय नहीं रहा। यही कारण है कि विकास और सुरक्षा दोनों को न्याय-सुरक्षा के ढाँचे में समझना आवश्यक है।

4. सुरक्षा दृष्टिकोण: आवश्यकता, उपलब्धि और सीमा

सुरक्षा दृष्टिकोण की बुनियादी आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। वामपंथी उग्रवादी संगठन जब हथियारबंद ढाँचे, विस्फोट, लक्षित हत्या, पुलिस पर हमले, ठेकेदारों से वसूली और विकास-कार्य में बाधा का रास्ता अपनाते हैं, तो राज्य का दायित्व है कि वह नागरिकों और संस्थानों की रक्षा करे। लोकतांत्रिक व्यवस्था

---

[3] भारत सरकार, गृह मंत्रालय/प्रेस सूचना ब्यूरो, "राष्ट्रीय नीति और कार्य-योजना, 2015" पर आधिकारिक विवरण; इस नीति में सुरक्षा, विकास, अधिकारों और स्थानीय समुदायों से संबंधित समेकित दृष्टिकोण को रेखांकित किया गया है।

[4] बेला भाटिया, "मध्य बिहार में नक्सलवादी आंदोलन," 1536-1549।

[5] जॉर्ज जे. कुन्नाथ, "ग्रामीण बिहार में नक्सलवादी बनना: वर्ग-संघर्ष और उसके अंतर्विरोध," *जर्नल ऑफ पीज़ेंट स्टडीज़* 33, अंक 1 (2006): 89-123।

में राजनीतिक असहमति का स्थान है, परंतु सशस्त्र हिंसा को वैध राजनीतिक प्रतिस्पर्धा नहीं माना जा सकता। इसलिए पुलिस, अर्धसैनिक बल, खुफिया तंत्र, सड़क-सुरक्षा, संचार और न्यायिक कार्रवाई सुरक्षा नीति के अनिवार्य घटक हैं।

बिहार में हाल के वर्षों की स्थिति सुरक्षा दृष्टिकोण की प्रभावशीलता की ओर संकेत करती है। उपलब्ध आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार राज्य में वामपंथी उग्रवाद से संबंधित घटनाएँ 2021 में 20 थीं, जो 2024 में घटकर 2 और 2026 में 15 मार्च तक शून्य हो गईं। इसी अवधि में नागरिक और सुरक्षा बलों की मृत्यु में भी उल्लेखनीय गिरावट दिखाई देती है।[6] यह परिवर्तन केवल आंकड़ा नहीं है; इसका अर्थ ग्रामीण जीवन में भय की कमी, प्रशासनिक गतिशीलता की वृद्धि और विकासात्मक गतिविधियों के लिए अधिक सुरक्षित वातावरण भी है।

फिर भी सुरक्षा दृष्टिकोण की सीमा स्पष्ट है। यदि सुरक्षा केवल बल-प्रयोग, गिरफ्तारी और अभियानों तक सीमित रहे, तो वह समाज में दीर्घकालीन विश्वास नहीं बना पाती। सुरक्षा बलों की उपस्थिति नागरिकों को भरोसा भी दे सकती है और भय भी पैदा कर सकती है; यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनका व्यवहार कितना कानूनसम्मत, जाति-वर्ग निष्पक्ष, जवाबदेह और नागरिक-केंद्रित है। के. एस. सुब्रमण्यन ने राजनीतिक हिंसा और पुलिस के संबंध में यह दिखाया है कि जब पुलिस राजनीतिक या सामाजिक पक्षपात से प्रभावित दिखती है, तो वह सुरक्षा के बजाय वैधता-संकट पैदा कर सकती है।[7]

इसलिए बिहार में सुरक्षा नीति का उच्चतर लक्ष्य केवल उग्रवादी हिंसा को कम करना नहीं, बल्कि राज्य के वैध बल-एकाधिकार को न्यायपूर्ण बनाना है। वैध बल-एकाधिकार का अर्थ है कि राज्य हिंसा का प्रयोग कानून की सीमा में, नागरिकों की रक्षा के लिए और उत्तरदायी संस्थागत नियंत्रण के अधीन करता है। यदि यह शर्त पूरी होती है, तो सुरक्षा नीति लोकतांत्रिक शांति का आधार बनती है। यदि नहीं, तो सुरक्षा स्वयं असंतोष का स्रोत बन सकती है।

5. विकास दृष्टिकोण: गरीबी, अवसर और नागरिकता

विकास दृष्टिकोण की शक्ति इस बात में है कि वह नक्सलवाद को केवल हिंसा के रूप में नहीं, बल्कि वंचना और राज्य-अनुपस्थिति के लक्षण के रूप में पढ़ता है। बिहार जैसे राज्य में जहाँ गरीबी, रोजगार-असुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य से जुड़ी चुनौतियाँ लंबे समय तक गहरी रही हैं, वहाँ विकास को शांति-निर्माण के केंद्रीय घटक के रूप में देखना आवश्यक है। विकास केवल आर्थिक वृद्धि नहीं है; यह नागरिकों को अवसर, सम्मान, गतिशीलता और राज्य पर विश्वास देने की प्रक्रिया है।

बहुआयामी गरीबी के आंकड़े इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हैं। नीति आयोग और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा विकसित राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक के अनुसार बिहार में बहुआयामी गरीबी की दर एन.एफ.एच.एस.-4 में 51.89 प्रतिशत थी, जो एन.एफ.एच.एस.-5 में घटकर 33.76 प्रतिशत हुई। इसी अवधि में भारत का औसत 24.85 प्रतिशत से घटकर 14.96 प्रतिशत हुआ।[8] इसका अर्थ है कि बिहार में कमी महत्त्वपूर्ण रही, परंतु गरीबी का स्तर राष्ट्रीय औसत से अधिक बना रहा। नक्सल-प्रभावित या पूर्व-प्रभावित जिलों के लिए यह तथ्य विशेष अर्थ रखता है, क्योंकि गरीबी और राज्य-अनुपस्थिति का संयोजन उग्रवादी अपील को पोषण दे सकता है।

---

[6] भारत सरकार, प्रेस सूचना ब्यूरो, गृह मंत्रालय, "बिहार के वामपंथी उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास," 1 अप्रैल 2026, अनुलग्नक-2।

[7] के. एस. सुब्रमण्यन, *भारत में राजनीतिक हिंसा और पुलिस* (नई दिल्ली: सेज, 2007)।

[8] नीति आयोग और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, *राष्ट्रीय बहुआयामी गरीबी सूचकांक: प्रगति समीक्षा 2023*।

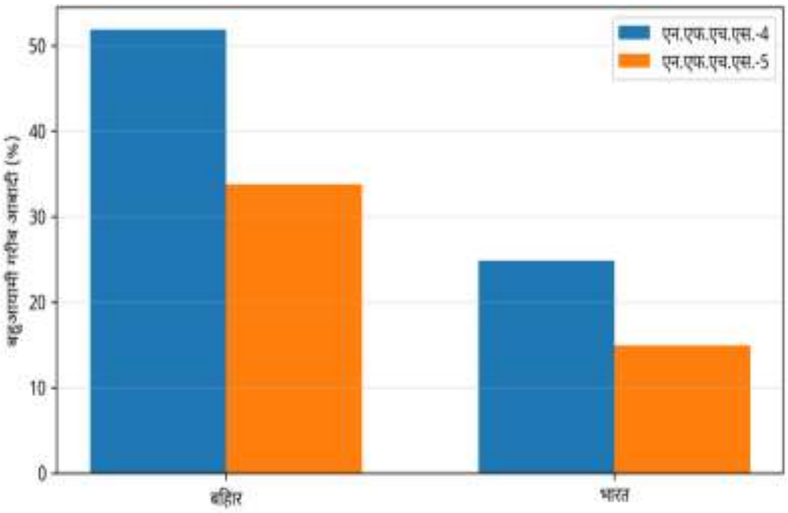

चित्र 1: बहुआयामी गरीबी में कमी: बिहार और भारत

चित्र 1 यह संकेत करता है कि बिहार ने गरीबी घटाने में उल्लेखनीय प्रगति की है, लेकिन उसकी प्रारंभिक अवस्था बहुत कमजोर थी और वर्तमान स्तर भी राष्ट्रीय औसत से ऊपर है। इसीलिए विकास को केवल "उग्रवाद घटने के बाद" की नीति नहीं माना जा सकता; यह उग्रवाद-रोधी नीति का मूल तत्व है। जब विद्यालय, सड़क, मोबाइल संपर्क, बैंकिंग और कौशल संस्थान नागरिक जीवन में पहुँचते हैं, तो वे राज्य की वैध उपस्थिति को भौतिक रूप देते हैं।

विकास दृष्टिकोण को तीन स्तरों पर समझना चाहिए। पहला, बुनियादी अवसंरचना: सड़क, पुल, बिजली, संचार और बैंकिंग प्रशासन और बाजार दोनों को नागरिकों के निकट लाते हैं। दूसरा, मानव विकास: शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और कौशल नागरिकों को उग्रवादी या अपराधी संरचनाओं से बाहर निकलने का अवसर देते हैं। तीसरा, सामाजिक न्याय: भूमि-अधिकार, मजदूरी, सुरक्षा, लैंगिक न्याय और जाति-आधारित भेदभाव से मुक्ति विकास को वैधता देती है। यदि विकास केवल सड़क और भवन तक सीमित है, पर सामाजिक न्याय और अधिकारों से नहीं जुड़ता, तो उसका राजनीतिक प्रभाव सीमित रहता है।

6. विशेष केंद्रीय सहायता और संसाधनों की राजनीति

वामपंथी उग्रवाद से प्रभावित क्षेत्रों में केंद्र सरकार की विशेष केंद्रीय सहायता जैसी योजनाएँ विकास और सुरक्षा के बीच नीति-पुल का काम करती हैं। आधिकारिक विवरण के अनुसार विशेष केंद्रीय सहायता योजना के अंतर्गत 2017-18 से बिहार को 462.57 करोड़ रुपये जारी किए गए, जबकि सभी संबद्ध राज्यों को कुल 4,175.10 करोड़ रुपये जारी किए गए।[9] यह राशि केवल वित्तीय हस्तांतरण नहीं है; यह संघीय नीति का उपकरण है जिसके माध्यम से केंद्र प्रभावित जिलों में सार्वजनिक अवसंरचना और प्रशासनिक उपस्थिति को मज़बूत करने का प्रयास करता है।

[9] भारत सरकार, प्रेस सूचना ब्यूरो, गृह मंत्रालय, "बिहार के वामपंथी उग्रवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास," 1 अप्रैल 2026।

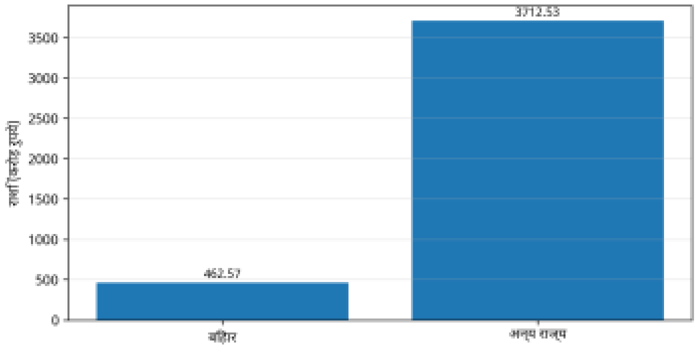

चित्र 2: विशेष केंद्रीय सहायता में बिहार का हिस्सा

चित्र 2 दिखाता है कि बिहार को इस योजना में उल्लेखनीय हिस्सा मिला। किंतु संसाधन की उपलब्धता और संसाधन की राजनीतिक प्रभावशीलता अलग-अलग बातें हैं। यदि धन स्थानीय जरूरतों के अनुरूप, पारदर्शी, समयबद्ध और सहभागी ढंग से खर्च होता है, तो वह नागरिकों में विश्वास पैदा करता है। यदि वही धन ठेकेदारी, भ्रष्टाचार, राजनीतिक पक्षपात या अधूरे कार्यों में फँसता है, तो विकास राज्य-वैधता नहीं बना पाता। इसलिए विकास का प्रश्न केवल बजट का नहीं, बल्कि क्रियान्वयन और सामाजिक नियंत्रण का भी है।

बिहार में विकासात्मक संसाधनों की राजनीति जाति, वर्ग और स्थानीय प्रभुत्व से अलग नहीं है। नक्सल प्रभावित या पूर्व-प्रभावित क्षेत्रों में विकास-कार्य अक्सर ठेकेदार, स्थानीय नेता, पुलिस, प्रशासन और समुदायों के बीच शक्ति-संतुलन से प्रभावित होता है। उग्रवादी संगठन भी कई बार विकास-कार्य से वसूली या नियंत्रण की कोशिश करते रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में विकास कार्यक्रमों की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि राज्य स्थानीय समाज में निष्पक्ष, पारदर्शी और सहभागी ढंग से काम कर पाता है या नहीं।

विशेष केंद्रीय सहायता के साथ-साथ संचार टॉवर, डाकघर, बैंक शाखाएँ, ए.टी.एम., बैंकिंग संवाददाता, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान और आवासीय विद्यालय जैसे उपाय राज्य की व्यापक उपस्थिति को बढ़ाते हैं। आधिकारिक विवरण में बिहार के लिए 366 मोबाइल टॉवरों के चालू होने, 264 डाकघरों, 215 बैंक शाखाओं, 26 ए.टी.एम. और 17,855 बैंकिंग संवाददाताओं जैसे आंकड़ों का उल्लेख है।[10] ये संस्थागत बिंदु उग्रवाद-रोधी राजनीति में इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे नागरिकों को राज्य और बाजार दोनों से जोड़ते हैं।

7. शासन दृष्टिकोण: विकास और सुरक्षा के बीच पुल

विकास और सुरक्षा के बीच वास्तविक पुल शासन है। शासन का अर्थ प्रशासनिक आदेश मात्र नहीं, बल्कि वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से राज्य नागरिकों की शिकायतें सुनता है, संसाधन वितरित करता है, अधिकार लागू करता है, हिंसा नियंत्रित करता है और स्वयं जवाबदेह रहता है। नक्सल-प्रभावित क्षेत्रों में शासन की गुणवत्ता निर्णायक है, क्योंकि वहाँ नागरिक राज्य को केवल कानून की पुस्तक से नहीं, बल्कि थाना, पंचायत, प्रखंड कार्यालय, विद्यालय, राशन दुकान, स्वास्थ्य केंद्र और बैंक के अनुभव से पहचानते हैं।

यदि नागरिक को विकास योजना मिले लेकिन रिश्वत देनी पड़े, यदि शिकायत दर्ज न हो, यदि पुलिस स्थानीय प्रभुत्वशाली समूहों से प्रभावित दिखे, यदि भूमि-विवाद वर्षों तक लंबित रहें, यदि स्कूल भवन है लेकिन शिक्षक अनुपस्थित हों, तो राज्य की उपस्थिति अविश्वसनीय रहती है। ऐसी स्थिति में विकास और सुरक्षा दोनों अपना राजनीतिक अर्थ खो देते हैं। इसके विपरीत, जब शासन समानता, निष्पक्षता और उत्तरदायित्व दिखाता है, तब नागरिक उग्रवादी समूहों की वैकल्पिक सत्ता से दूरी बनाते हैं।

[10] वही।

बिहार में पंचायत संस्थाएँ, स्थानीय प्रशासन और जिला-स्तरीय योजना प्रक्रियाएँ शांति-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। पंचायतों के माध्यम से स्थानीय जरूरतों की पहचान, सामाजिक अंकेक्षण, दलित और महिला प्रतिनिधियों की सुरक्षा, युवाओं की भागीदारी और योजनाओं की निगरानी की जा सकती है। परंतु पंचायत स्वयं तभी प्रभावी होगी जब वह स्थानीय प्रभुत्व की पुनरावृत्ति न बन जाए। इसलिए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को सामाजिक न्याय से जोड़ना आवश्यक है।

शासन दृष्टिकोण यह भी स्पष्ट करता है कि नक्सलवाद की समाप्ति केवल संगठनात्मक रूप से नहीं, बल्कि वैधता के स्तर पर होती है। किसी जिले को प्रशासनिक रूप से प्रभावित श्रेणी से बाहर कर देना महत्त्वपूर्ण है, परंतु स्थायी शांति तब बनती है जब नागरिकों के लिए राज्य भय के बजाय भरोसे का स्रोत बनता है। यह भरोसा केवल भाषणों से नहीं, बल्कि न्याय, समयबद्ध सेवा और सम्मानजनक प्रशासनिक व्यवहार से उत्पन्न होता है।

8. "विकास पहले" की आलोचना

"विकास पहले" की धारणा नैतिक रूप से आकर्षक लगती है, क्योंकि वह राज्य को दमनकारी नहीं बल्कि कल्याणकारी भूमिका में रखती है। परंतु इसके भीतर कुछ गंभीर सीमाएँ हैं। पहली सीमा यह है कि विकास को कई बार हिंसात्मक नियंत्रण और उग्रवादी अवरोधों की वास्तविकता से अलग कर दिया जाता है। यदि सड़क बनाने वाली मशीनें जलाई जा रही हों, विद्यालयों को धमकी मिल रही हो, ठेकेदारों से वसूली हो रही हो और स्थानीय प्रतिनिधि भय में हों, तो विकास की प्रक्रिया स्वयं सुरक्षा पर निर्भर हो जाती है।

दूसरी सीमा यह है कि विकास को प्रायः अवसंरचना के रूप में समझ लिया जाता है। सड़क, भवन और टॉवर आवश्यक हैं, परंतु वे स्वतः न्यायपूर्ण समाज नहीं बनाते। सड़क से प्रशासन आता है, पर सड़क से स्थानीय प्रभुत्व भी तेज़ हो सकता है; बैंक खाता वित्तीय समावेशन देता है, पर ऋण, बाजार और आय के बिना खाता निष्क्रिय रह सकता है; विद्यालय भवन शिक्षा का प्रतीक है, पर शिक्षक और सामाजिक समावेशन के बिना वह प्रभावी नहीं होता। इसलिए विकास को सामाजिक न्याय और शासन-सुधार से जोड़ना अनिवार्य है।

तीसरी सीमा यह है कि "विकास पहले" कभी-कभी नागरिक शिकायतों को तकनीकी भाषा में बदल देता है। भूमि-अधिकार, जातिगत अपमान, पुलिस-पक्षपात और न्यायिक विलंब केवल विकास-घाटा नहीं हैं; वे राजनीतिक और नैतिक प्रश्न हैं। यदि इन्हें केवल योजनाओं से संबोधित किया जाता है, तो समस्या का मूल असमानता और अधिकार का प्रश्न अनसुलझा रह जाता है। इसीलिए विकास दृष्टिकोण को अधिकार-आधारित, सहभागितापूर्ण और न्याय-उन्मुख बनाना आवश्यक है।

9. "सुरक्षा पहले" की आलोचना

"सुरक्षा पहले" की धारणा भी अपनी जगह तर्कसंगत है, परंतु इसका संकीर्ण रूप लोकतांत्रिक राजनीति के लिए जोखिमपूर्ण हो सकता है। जब राज्य उग्रवाद-रोधी नीति को केवल सैन्य या पुलिसीय कार्यवाही तक सीमित कर देता है, तो स्थानीय समाज की वे शिकायतें अनदेखी रह जाती हैं जिनसे उग्रवाद की सामाजिक अपील बनी थी। हिंसा की तत्काल कमी इस बात की गारंटी नहीं देती कि समाज में न्याय, अवसर और राज्य पर विश्वास स्थापित हो गया है।

दूसरा जोखिम नागरिक अधिकारों से जुड़ा है। उग्रवाद-प्रभावित क्षेत्रों में पुलिस और सुरक्षा बलों को कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता है, परंतु लोकतांत्रिक शासन में कानून की सीमाएँ और मानवाधिकारिक उत्तरदायित्व अनिवार्य हैं। यदि झूठे मुकदमे, अतिरेक, सामूहिक संदेह या नागरिक अपमान की शिकायतें बढ़ती हैं, तो सुरक्षा नीति स्वयं राज्य-विरोधी भावना को जन्म दे सकती है। इसलिए सुरक्षा की सफलता केवल अभियानों की संख्या से नहीं, बल्कि नागरिक भरोसे से मापी जानी चाहिए।

तीसरा जोखिम यह है कि सुरक्षा-प्रधान नीति स्थानीय लोकतंत्र को संकुचित कर सकती है। उग्रवाद की आड़ में यदि पंचायत, जनसंगठन, श्रमिक माँगें या भूमि-संबंधी आंदोलनों को भी संदेह की दृष्टि से देखा जाता

है, तो लोकतांत्रिक असहमति कमजोर होती है। एक परिपक्व राज्य को हिंसक उग्रवाद और लोकतांत्रिक प्रतिरोध के बीच स्पष्ट अंतर रखना चाहिए। यही अंतर सुरक्षा को लोकतांत्रिक बनाता है।

10. बिहार से प्राप्त राजनीतिक सबक

बिहार का अनुभव तीन प्रमुख राजनीतिक सबक देता है। पहला, नक्सलवाद की समस्या को सुरक्षा और विकास के यांत्रिक जोड़ से नहीं, बल्कि राज्य-सामाजिक संबंध के पुनर्निर्माण से हल किया जा सकता है। यदि नागरिकों को लगता है कि राज्य उनकी सुरक्षा करता है, उनकी शिकायत सुनता है और उन्हें अवसर देता है, तो उग्रवादी संगठनों की वैचारिक शक्ति कम होती है। दूसरा, शांति केवल हिंसा की अनुपस्थिति नहीं है। शांति का अर्थ है भय से मुक्ति, न्याय तक पहुँच, राजनीतिक भागीदारी और गरिमापूर्ण जीवन।

तीसरा, पूर्व-प्रभावित क्षेत्रों में नीति की चुनौती हिंसा कम होने के बाद शुरू होती है। जब उग्रवादी संगठन कमजोर पड़ते हैं, तब राज्य को अधिक संवेदनशील और अधिक लोकतांत्रिक होना चाहिए। यदि इस चरण में विकास योजनाओं की गति घटती है, प्रशासन पुनः दूर हो जाता है या स्थानीय शिकायतें अनसुनी रहती हैं, तो शांति अस्थायी रह सकती है। इसलिए "लेगेसी" क्षेत्रों में निरंतर निवेश, सामाजिक निगरानी और प्रशासनिक सुधार आवश्यक हैं। गृह मंत्रालय की हालिया श्रेणीकरण व्यवस्था में भी ऐसे जिलों को पूर्णतः उपेक्षित करने के बजाय पुनरुत्थान रोकने और विकास-सुरक्षा उपायों के लिए महत्त्व दिया गया है।[11]

बिहार में नीति-निर्माण का अगला चरण युवाओं और स्थानीय अर्थव्यवस्था पर केंद्रित होना चाहिए। कौशल संस्थान, ग्रामीण उद्यम, कृषि-बाजार, स्थानीय रोजगार, डिजिटल सेवाएँ, महिला सुरक्षा और सामाजिक न्याय तंत्र को उग्रवाद-रोधी दृष्टिकोण के अभिन्न अंग के रूप में देखना होगा। नक्सलवाद से बाहर निकलते समाजों में युवा नागरिकों को यदि रोजगार और सम्मानजनक सार्वजनिक जीवन नहीं मिलता, तो वे नए प्रकार की हिंसक या आपराधिक राजनीति की ओर आकर्षित हो सकते हैं।

11. निष्कर्ष

नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विकास बनाम सुरक्षा की बहस को बिहार का अनुभव एक अधिक परिपक्व निष्कर्ष की ओर ले जाता है। विकास और सुरक्षा दो विरोधी विकल्प नहीं हैं; वे लोकतांत्रिक शासन के दो आवश्यक आयाम हैं। सुरक्षा नागरिकों को हिंसा से मुक्त करती है और राज्य की वैधानिक उपस्थिति स्थापित करती है। विकास नागरिकों को अवसर, सेवा और जीवन-स्तर का विस्तार देता है। शासन इन दोनों को न्याय, जवाबदेही और वैधता से जोड़ता है। इनमें से किसी एक को दूसरे के स्थान पर रख देने से नीति अधूरी हो जाती है।

बिहार में वामपंथी उग्रवाद की हिंसात्मक क्षमता में कमी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। परंतु राजनीतिक विश्लेषण यह सावधानी बरतता है कि हिंसा की कमी को संरचनात्मक न्याय की पूर्ण प्राप्ति न समझा जाए। बहुआयामी गरीबी, भूमि-संबंधी विवाद, जातीय असमानता, युवाओं की बेरोजगारी और प्रशासनिक विश्वसनीयता की चुनौतियाँ अभी भी नीति-सतर्कता की माँग करती हैं। इसलिए बिहार के लिए सर्वोत्तम दृष्टिकोण "विकास या सुरक्षा" नहीं, बल्कि "न्यायपूर्ण विकास, वैध सुरक्षा और उत्तरदायी शासन" है।

इस लेख का निष्कर्ष है कि नक्सलवाद-रोधी नीति तभी स्थायी होगी जब राज्य अपने नागरिकों को केवल नियंत्रित जनसंख्या के रूप में नहीं, बल्कि अधिकार-संपन्न नागरिकों के रूप में देखे। यदि विकास अधिकार-आधारित होगा, सुरक्षा कानूनसम्मत होगी और शासन स्थानीय रूप से विश्वसनीय होगा, तो बिहार में वामपंथी उग्रवाद की वैचारिक और संगठनात्मक पुनरावृत्ति की संभावना कम होगी। यही लोकतांत्रिक राज्य की वास्तविक विजय है।

[11] भारत सरकार, गृह मंत्रालय, "अप्रैल 2026 की मासिक प्रमुख उपलब्धियाँ," जून 2026, पृ. 2-3।

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न

चेतना सिंह*

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री स्वतंत्रता पर बार–बार प्रश्न उठता है। वह एक स्वयं स्त्री है उन्होंने भारतीय परिवेश की स्त्रियों की दशा को भली–भांति देखा, समझा व भोगा है। स्त्री की जटिलताओं को उनकी स्वतंत्रता को अत्यंत सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है। आपने अपने कथा साहित्य में स्त्री को केवल करूणा की पात्र के रूप में नहीं, अपितु एक अत्यंत स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में चरित्रार्थ किया है। उनके पात्र अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और जीवन निर्णयों के प्रति सजग है। नामवर सिंह का मानना है कि ''सोबती ने स्त्री के स्वभाव और उसके मनोविज्ञान को अत्यंत गहराई से समझा है और उसे निर्भीक स्वर प्रदान किया है।''[1]

कृष्णा सोबती ने अपनी रचनाओं में स्त्री की जिन समस्याओं को उठाया है, वे उनके समकालीन स्त्री रचनाकारों से भिन्न है। उन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री स्वर का सत्य बेबाकी से सबके सामने उजागर किया है। आपकी रचनायें स्वायत्त बोध की है। कहानी व उपन्यास की स्त्री पात्र अपने चरित्र, ऊब, अकेलेपन, बेबसी, निर्वासन, विद्रोही, जैसी परिसिथति में जीवन यापन करती हैं। ये विपरीत परिस्थितियों मे भी जूझती हैं, संघर्ष करती हैं, अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश करती दिखाई देती हैं।

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्रियों की स्वतंत्रता का प्रश्न मुख्यतः चार भागों में विभक्त कर देख सकते हैं–

1. सामाजिक संदर्भ
2. आर्थिक संदर्भ
3. सांस्कृतिक संदर्भ
4. वैचारिक संदर्भ

1. स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न : सामाजिक संदर्भ :–

समाज का निर्माण व्यक्ति से होता है। व्यक्ति से समाज नहीं छिना जा सकता है और न ही समाज से व्यक्ति को ही भिन्न किया जा सकता है। जब व्यक्ति से उसके व्यक्तित्व को ही छिन लिया जाता है तो वह समाज कैसा होगा? साहित्य को हमेशा समाज के सवाल से जुझना होता है। कृष्णा जी का समय समाज अनेक उतार चढ़ाव से जूझ रहा था। उसका प्रभाव उनकी रचनाओं पर भी पड़ा। स्त्रियों के साथ हो रहे भेदभाव व विसंगतियों को देखने का नजरिया आपका अन्य स्त्री रचनाकारों से भिन्न है। स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्रियों के प्रति भारतीय लोगों की दृष्टि में परिवर्तन हुआ है जिसको कृष्णा जी के साहित्य में साफ–साफ देखा जा सकता है। आपने स्त्री चरित्र के कई परतों को उकेरा है। वह स्त्री की स्वतंत्रता के प्रति उदारता और वकालत करती कई कहानी व उपन्यास में दिखती हैं।

भारतीय समाज में किसी भी वर्ग, समुदाय या जाति की स्त्री का अकेले रहना आसान नहीं है। 'डार से बिछुड़ी' पाशो इसी समाज में रहती है। वह जानती है निरपराध होने के बावजूद माँ की कलंक कथा के कारण मामा का परिवार उसके प्रति हृदयहीन हो गया है। सामाजिक मर्यादा एवं प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए वर्जना की बेड़ियाँ उसके पैरों में डालना जहाँ एक ओर उनकी मजबूरी हो गई है वहाँ दूसरी ओर यौवन का उन्माद और स्वतंत्रता में जीने की लालसा पाशों के लिए अभिशाप साबित हुआ। इस उपन्यास में कृष्णा जी ने सर्वप्रथम स्त्री स्वतंत्रता पर जोर दिया साथ ही समाज के हाथों कैसे नैतिक मूल्यों की वेदी पर पाशो का चढ़ा दिया जाता है। अमृताराय कहती है, ''किसी को लांछित करने में समाज को रस आता है और लांछन की पात्री सुन्दर विधवा हो तब तो फिर क्या पूछना। हमारे समाज में लांछन सदावृत खुला रहता है।''[2] उपन्यास में पाशो, बेटी, बहन, पत्नी, माँ, विधवा और रखैल आदि की सभी स्त्री पात्र चित्रित हैं। प्रत्येक भूमिका में परिस्थितियों के अनुसार पाशों का चरित्र उसकी स्वतंत्रता और निजता की परत कृष्णा जी खोलती जाती हैं और वह समाज के उन हर मानवीय प्राणी से प्रश्न करती दिखती हैं। स्त्री जीवन के समक्ष जन्म से असुरक्षा

* शोधार्थिनी, हिन्दी–विभाग, राजा श्रीकृष्ण दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सम्बद्ध : वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, उ0प्र0।

और विडम्बना को रेखांकित करती हैं। इस संदर्भ में डॉ0 विद्या चिटको कहती हैं– ''आज व्यक्ति प्रगत विकसित और बौद्धिक ऊँचाई पर पहुँच गया है, पर भीतर से खोखला हो रहा है। ऊपर से रूढ़ियाँ तोड़ने का दिखावा कर रहा है पर नारी के प्रति उसकी दृष्टि नहीं बदलती है।''[3]

'मित्रो मरजानी' मित्रों पंजाब के एक संयुक्त परिवार की मंझली बहू और सरदारी लाल की पत्नी के रूप में इस उपन्यास में उपस्थित है। मित्रों उन्मुक्त उच्छृंखल स्वभाव की होने के कारण वह अक्सर पति से उलझती और पिटती रहती है। इस उपन्यास में मित्रों के माध्यम से कृष्णा जी ने उन अनेक स्त्रियों के वैवाहिक जीवन पर प्रश्न उठाया है जो पति की शारीरिक कमी के कारण माँ नहीं बन पाती किन्तु समाज उन स्त्रियों को ही दोषी मानता है। इतना ही उन्होंने मित्रों के माध्यम से उस स्त्री को भी उकेरा है जो मानसिक, शारीरिक और मौखिक रूप से उन्मुक्त होकर रहना चाहती है। ''किसी भी घर गृहस्थी के ऑगन में मित्रों जैसी स्त्रियों की महक सूँघी जा सकती है। सोबती ने अपने आस–पास इसको महसूस भी किया है। सोबती के निकट मित्रो मरजानी की कथा को लेकर कोई योजना नही थी। पर्त–दर–पर्त कहानी खुद–ब–खुद उभरती रही, चलती रही। तन–मन की लय, गृहस्थी की जुगलबंदी में प्यार–मनुहार लड़ाई–झगड़े।''[4]

'मित्रो' जैसी स्त्री जो परम्परागत नैतिक बोध से स्वतंत्र है। वह हिन्दी कथा की अकेली स्त्री है जो पूरे समाज से प्रश्न करती नजर आती है। ''जिन्द जान का यह कैसा व्यापार? अपने लड़के बीज डालें तो पुण्य, दूजे डालें तो कुकर्म।''[5] कृष्णा जी ने स्त्री के उस रूप का चित्रण उपन्यास में किया है जिस पर पुरुष का एकाधिकार रहा। आपने मित्रों के माध्यम से स्त्री के अधिकार व स्वतन्त्रता पर एक साहस भरा कदम उठाया है।

समाज में हमेशा स्त्रियाँ सामाजिकता की बलि चढ़ जाती हैं। किन्तु कुछ साहसी होती हैं जो इसका विरोध कर समाज की परवाह किये बगैर अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं। कृष्णा जी कथा में इन्हीं स्त्रियों ने स्थान पाया है जो समाज से न सिर्फ नजर मिलाती हैं अपितु, हर समस्या पर प्रश्न करती हैं। चाहे वह असमानता (लिंग भेद) पर हो, चाहे वह वेश्यावृत्ति पर हो, चाहे वह बलात्कार पर हो, रूढ़िगत परम्परा हो या फिर विवाह जैसी संस्था पर हो।

'दिलो दानिश' की छुन्ना विवाह के चार–पाँच वर्षों के बाद विधवा हो जाती है। ससुराल और मायके की प्रताड़ना उसे सहन नहीं होती। सभी को ये उम्मीद होती है कि वह पूजा अर्चना में मन लगाये, सफेद साड़ी पहने, गहने व साज श्रृंगार से मोह त्याग दे, कुल मिलाकर वह विधवानुकूल आचरण करें। किन्तु छुन्ना अपने जीवन को जीना चाहती है। भविष्य बनाना चाहती है। वह विषम परिस्थिति में भी पढ़ाई कर, स्कूल में पढ़ाती है और जीवन साथी का चुनाव कर आर्य समाज में विवाह कर लेती है। वह कहती है– ''कमबख्त हमारे यहाँ सारा धौंस–धमाका सुहाग बिन्दी का ही है। बिना इसके तो हम जैसी या तो घर का तमाशा या बदशकुनी की पुड़िया।''[6] यहाँ भी हम देखते हैं कि कृष्णा जी ने 'छुन्ना' के माध्यम से स्त्री की जागरूकता, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास एवं आर्थिक स्वावलम्बन का प्रभाव प्रस्तुत किया है। 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास में स्त्री के उस पक्ष को उठाया है जिसे सभ्य समाज मुँह से बोलना भी पसंद नहीं करता। स्त्री शोषण का सबसे भयानक रूप 'बलात्कार' है। बचपन से स्त्री को यह बताया जाता है कि वह अपने स्त्रीत्व की रक्षा जान से ज्यादा करें बलात्कार स्त्री के शरीर का ही नही होता अपितु मन–मस्तिष्क का भी होता है। कृष्णा जी ने इस उपन्यास में स्त्री के उसी पक्ष को समाज के सामने रखा है। उपन्यास की नायिका 'रक्तिका' जब अबोध बालिका थी, तो उसके साथ बलात्कार किया गया था। परिणामतः शैशवास्था की उसकी जिन्दगी बुरी तरह से मानसिक व शारीरिक त्रासदी से भर गई। समाज से उसे उपेक्षा व पीड़ा मिलने लगी। ''रत्ती कोई औरत नही वह सिर्फ गीली लड़की है। जब भी जलेगी धुआँ देगी। सिर्फ धुंआँ।''[7] वह इस घटना को भूलना चाहती है फिर भी भूल नही पाती, यह समाज उसे कचोट–कचोट कर याद दिलाता रहता है। सीमोन द बोउवा ने सत्य ही कहा है 'स्त्री पैदा नही होती बल्कि उसे बना दिया जाता है।' रत्ती भी ऐसी न थी परन्तु समाज ने उसे मजबूर कर दिया। ''मानसिक स्तर पर यौन संबंध के लिए सक्रिय रहकर भी वह शारीरिक स्तर पर काठ हो गई है यही उसकी मूल समस्या भी है।''[8] कृष्णा जी ने इस कथा रचना के माध्यम से हो रहे नंगे भारतीय समाज में स्त्री की चीख को मुखरित किया है। इस कहानी ने पूरे समाज को न सिर्फ नंगा किया है बल्कि समाज के उन सभी ठेकेदारों से प्रश्न भी किया है जो रत्ती के मॉ–बाप कहलाते हैं, दोस्त–रिश्तेदार कहलाते हैं। आखिर समाज भी इन्हीं से बनता है। रत्ती इस समाज से एक लम्बी व संघर्षपूर्ण लड़ाई लड़ती है। यह समाज उसे बार–बार हराता है किन्तु वह हारती नहीं, वह सिर उठा आगे बढ़ती जाती है। कृष्णा जी की दृष्टि में रत्ती की व्यथा उन समस्त स्त्रियों की व्यथा है जिन्हें धूल–मिट्टी

समझ कर समाज भूल जाता है। वह कहती हैं कि– 'सूरजमुखी अंधेरे के' यथार्थ और सत्य के निरूपण की वह असाधारण सत्यकथा है जिसका सत्य कभी मरता नहीं।''[9]

इस तरह से स्पष्ट होता है कि कृष्णा जी के कथा साहित्य में समाज से उत्पन्न ऐसी तमाम कुप्रथाओं पर प्रश्न करती दृष्टिगत होती है भारतीय समाज में कई कुप्रथाएं हैं जो आज भी मान्य है। इन प्रथाओं के बीच में स्त्री जीवन मात्र एक चुनौती बन कर रह जाता है। बालपन से लेकर वृद्धा अवस्था यह लााचार और पीड़ित ही दिखती है। हम यह कह सकते हैं कि कृष्णा जी ने अपने समग्र कथा साहित्य मे बड़े ही साहस और 'बोल्डनेस' के साथ समाज में बढ़ रही सामाजिक समस्याओं पर तटस्थता से विचार किया और रूढ़िगत मान्यताओं की परवाह किये बगैर समाज के ठेकेदारों से प्रश्न किया है।

2. स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न : आर्थिक संदर्भ :–

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में वैदिक काल में स्त्री अध्ययन में पुरुषों के समान अधिकार थे। किन्तु विदेशी आक्रमणों और सामंती प्रवृत्ति स्त्री को शिक्षा और आर्थिक अधिकारों से वंचित कर दिया। जिससे पुरुष पर समाज और परिवार की जिम्मेदारी आ गई। आर्थिक समस्या के कारण स्त्री सदा से घरेलू अत्याचार को सहती आ रही है। तसलीमा नसरीन लिखती हैं– ''कुशासन के विरूद्ध आवाज उठाने या किसी भी तरह की विषमता को दूर करने के लिए स्त्री की पहली जरूरत है स्वावलंबी होना। स्वावलंबी न होने से हर स्त्री की जबान बंद रहती है। पॉव अचल और हाथ स्थिर रहते हैं चेतना भोंथरी हुई रहती है। इस भोंथरी चेतनावाली स्त्रियों से, इन जड़ वस्तुओं से किसी भी अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने की उम्मीद करना वैसा ही है, जैसा कि खच्चर के आदमी होने का सपना देखा जाए। स्त्री शिक्षित हो, आत्मनिर्भर हो, तभी वह अपने अधिकार के प्रति सचेत होगी। वरन् उसे क्या पाना है और क्या नहीं, यह स्वयं ही नही जान पायेगी– जैसा कि आज की अधिकतर स्त्रियाँ नही जानती।''[10]

कृष्णा सोबती ने आर्थिक समस्या से जूझ रही उन तमाम स्त्रियों को चरित्रों के माध्यम से चित्रित किया है। आर्थिक दबाव के कारण स्त्रियों की जिन्दगी नरक बन जाती है वह एक ओर परिवार में शोषण का शिकार होती है दूसरी ओर समाज में भी।

कृष्णा जी ने 'यारों के यार' में इस समस्या को उठाया है। उपन्यास की नायिका तमन्ना की जिन्दगी आर्थिक अभाव के कारण नरकीय हो गई है। वह अर्थ की तंगी के कारण अपने आपको बेच देती है। रोहणी जी इस संदर्भ में लिखती हैं– ''स्त्री के संदर्भ में जब बात कीमत पर आती है तो पहले–पहल जिस चीज का सौदा होता है वह है उसका शरीर, उसकी लज्जा, उसकी मर्यादा।''[11] तमन्ना आधुनिक युग की परिष्कृत वेश्या है जिसे हम कार्ल गर्ल कह सकते हैं। वह आर्डर मिलने पर अपने शरीर की सप्लाई करती है। देह का व्यापार वह पैसा कमाने के लिए करती है। तमाशा भी इसी तरह की स्त्री है जो पैसों को प्रमुखता देती है। समाज में कोई भी स्त्री अपने आप वेश्या नही बनती आर्थिक कारण और पारिवारिक मजबूरियाँ उसे वेश्या बना देती हैं।

'दिलो–दानिश' की वृद्धा हो चुकी बउआ बहुत अच्छी तरह ये समझती है कि स्त्री यदि आर्थिक रूप से मजबूत होगी तो उसे पुरुष का मुंह नहीं देखना पड़ेगा। पुरुष के सही गलत काम का विरोध कर सकती है। परिवार में आर्थिक सहायता के कारण उनका दबदबा बना रहता है। उसे किसी के भी आगे मिन्नते नही करनी पड़ती। वह कहती है– ''हमसे पूछो मर्द को गुमराह करने वाले फ़क़त, हुस्न और जवानी नहीं, उसकी कमाई है जो उसे ख़ुदमुख़्तारी देती है। सोचो, घर में बैठी–बैठी औरत क्या करेगी! गहनों की बकुची में से अक्ल की पुड़िया निकाल लेगी या भंडारघर से पैसा कमाने का तजुरबा समेट लेगी!''[12]

'मित्रो मरजानी' की बालो पैसों के ही कारण अपनी जिन्दगी को नरक बना लेती है। वह स्वयं वेश्या तो बन जाती है साथ ही अपनी बेटी को भी इस धंधे में उतारना चाहती है। जिन्दगीनामा की करतारो, राबयाँ, लखमी जैसे अनेक स्त्रियाँ हैं जो स्वयं की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए दूसरों के यहाँ काम करती हैं। आर्थिक समस्या से जूझती ये स्त्रियाँ कभी–कभी कर्जा भी ले लेती हैं। जिसके कारण ये साहूकार, सेठ के वश में आकर वेश्या या रखैल बन जाती है। इस सन्दर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं, सैकेंड सेक्स में ठीक ही लिखा है कि औरत की पहली लड़ाई अर्थ दुनिया से शुरू होती है। मैंने भी जीवन जीते यही सीखा कि पैसे कमाने से स्त्री निर्णय लेना सोचती है और निर्णय की क्षमता उसके संघर्ष को मजबूत करती है। आर्थिक परतंत्रता नारी विकास में बड़ी बाधा है। आर्थिक मजबूती ही स्त्री स्वतंत्रता में सहायक सिद्ध होती है।''[13] इसी क्रम में हम 'डार से बिछुड़ी' पाशों को भी देखते हैं जो आर्थिक रूप से मजबूत न होने के कारण जीवन भर पुरुषों के अधीन रही। परिणाम यह हुआ कि उसका जीवन भटकते बीता। कभी किसी की दासी,

तो किसी की रखैल बन कर अत्याचार सहती रही।

इस तरह से कृष्णा जी ने अपनी रचनाओं में आर्थिक परतंत्रता से सम्बंधित समाज व पाठक के समक्ष कई ज्वलंत प्रश्न रखती हैं। साथ ही समाधान के रूप यह बताती चलती हैं कि स्त्री की समस्त समस्याओं का समाधान आर्थिक संबल है। जिस पर वह मज़बूती से खड़ी होकर अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ सकती है। अपने सपनों और अधिकारों को पा सकती है।

वर्तमान में ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ हैं जो आर्थिक रूप से मजबूत हैं किन्तु अधिकार लेने का उनमें हौसला नही है। वे अपने अधिकार और अस्तित्व के लिए पुरुष पर ही निर्भर है। इससे प्रश्न अब भी वही है कि आर्थिक मजबूती होने पर भी क्या स्त्रियाँ स्वतन्त्र है?

3. स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न : सांस्कृतिक संदर्भ :–

स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न केवल सामाजिक या राजनीतिक मुद्दा नहीं है, बल्कि यह गहराई से संस्कृति परम्परा और मूल्य व्यवस्था सें जुड़ा हुआ प्रश्न है। समजा की संस्कृति ही यह निर्धारित करती है कि स्त्री की भूमिका, अधिकार, दायित्व और उसकी स्वतंत्रता की सीमाएं क्या होगी?

संस्कृति ने स्त्री को गृहस्थ जीवन की धुरी तो बनाया, लेकिन उसकी शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता और निर्णय–स्वतंत्रता पर कई बार नियंत्रण भी स्थापित किया। यही द्वंद्व स्त्री स्वतंत्रता के प्रश्न को जटिल बनाता है। समाज ने स्त्रियों के लिए सांस्कृतिक रूढ़ियाँ और परम्पराओं के आधार पर कई धारणाएं स्थापित की है जैसे– 'स्त्री का मुख्य धर्म परिवार है', 'लज्जा और मौन स्त्री के आभूषण हैं' निर्णय पुरुष का ही अधिकार है', ये विचार स्त्री के व्यक्तित्व विकास में बाधा बनते हैं। सांस्कृतिक रूढ़ियाँ अक्सर पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानांतरित होती हैं, जिससे परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी हो जाती हैं। भारतीय समाज की सांस्कृतिक संरचना लंबे समय तक पितृसत्तात्मक मूल्यों से संचालित रही है। परिवार, विवाह, मर्यादा, लज्जा और त्याग जैसे आदर्श स्त्री के जीवन को नियंत्रित करनेवाले सांस्कृतिक उपकरण बन जाते हैं। कृष्णा जी अपनी रचनाओं में इन मान्यताओं को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करती हैं वह यह पाठक व समाज को बताती भी चलती हैं कि स्त्री से संस्कृति की संरक्षक होने की अपेक्षा तो की जाती है किंतु उसी संस्कृति में उसकी इच्छाएं और स्वतंत्रता दोनों सीमित कर दी जाती हैं। कृष्णा सोबती की उपन्यासों की स्त्रियाँ इन बंधनों को तोड़ती नजर आती हैं 'मित्रो मरजानी' की मित्रो उस परम्परा को चुनौती देती नजर आती हैं यौन तृप्ति न होने पर वह खुलकर परिवार के सामने यह बात करती है। 'डार से बिछुड़ी' की पाशो की समस्या धर्म व संस्कृति की है। उसकी माँ शेख जाति के पुरुष संग भागकर विवाह कर लेती है जिसका दण्ड पाशो झेलती है। डॉ० उषा यादव लिखती हैं– ''समाज की घिसी–पिटी रूढ़ियाँ, जड़ संस्कार और मृतप्राय मान्यताएं भी पारिवारिक जीवन के लिए अभिशाप बन जाती हैं। कृष्णा सोबती के 'डार से बिछुड़ी' की ननिहाल में सिर्फ इसलिए यातनायें झेलती हैं क्योंकि उसकी माँ जाति धर्म की सीमाएं लांघकर शेख़ जी के यहाँ चली गई थी।''[14]

कृष्णा जी ने सांस्कृतिक के अन्तर्गत अपनी रचनाओं में समस्या के भिन्न–भिन्न रूपों पर प्रश्न उठाया है। 'समय–सरगम' की आरण्या लिंग पहचान का विरोध करती है। उसे यह ज्ञात है कि यह हमारी संस्कृति नही रही है किन्तु समाज में व्याप्त कुरीतियों में यह भी एक कुरीति अपना मुँह पसार रही है। जिस पर कृष्णा जी आरण्या के माध्यम से यह प्रश्न करतीहै– ''पुरानी व्यवस्था अब भी कायम है नए बदलाव के साथ। गर्भ में ही पुत्रियों की हत्या और पुत्रों के संरक्षण–साधन। कानून बन चुके हैं, मगर उन्हें लागू कौन करेगा?''[15]

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री किसी भी क्षेत्र में स्वतंत्र नही है। स्त्री की सबसे बड़ी समस्या उसका विवाह है। विवाह एक पवित्र संस्कार के रूप में भारतीय समाज में प्रचलित है। विवाह के बाद ही स्त्री का जीवन स्वर्ग या नरक बनता है। 'ज़िन्दगीनामा की करतारों, फतेह, दिलो–दानिश की मासूमा दहेज जैसी समस्या से पीड़ित है। जहाँ एक ओर कहने को आज की स्त्रियाँ पढ़–लिख कर अपने पैरों पर खड़ी हो रही हैं। इन सबके बावजूद भी दहेज का दानव न जाने कितनी स्त्रियों को निगल चुका है। वहाँ कुछ स्त्रियों का दूसरा रूप भी है जो अपनी आकांक्षाओं को खुल कर बताती है। परम्परा और संस्कार को छोड़कर आगे बढ़ रही हैं। 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्ती, जिसके लिए पुराने संस्कार, पुराने मूल्य कोई मायने नहीं रखते। उसके जीवन में सोलह पुरुष आए, उस संदर्भ में श्लील या अश्लील का कोई प्रश्न नहीं, वह शारीरिक सुख को भोग पूर्णतः औरत होना चाहती है। दिवाकर के साथ सुख की प्राप्ति कर वह मानसिक कुंठा से मुक्त हो जाती है। यदि हम स्त्री संस्कारों की बात करें तो पाते हैं कि जिन स्त्रियों ने अपनी सीमाओं को तोड़ा है, वह उनकी शारीरिक माँग है या परिस्थिति के कारण त्यागना अनिवार्य है। इससे यह संकेत मिलता है कि

संस्कृति स्थिर नहीं होती, अपितु यह समय के साथ विकसित होती है।

कृष्णा की रचनाओं की यह सबसे महत्वपूर्ण विशेषता रही है कि स्त्री देह और उसकी कामनाओं को सांस्कृतिक विमर्श का हिस्सा बनाती है। हम यह कह सकते हैं कि समाज में संस्कृति द्वारा निर्धारित 'शालीनता' के आदर्श को वह प्रश्न के कटघरे में खड़ा कर देती है।

भारतीय स्त्री का संस्कार परिवार की खुशी में रहना है। दिलो दानिश के वकील साहिब के जीवन में कुटुम्ब प्यारी जब तक रही घर में सब कुछ था सुख चैन। लेकिन जब से वकील साहिब के जीवन में महक बानो का प्रवेश हुआ, तूफान सा आ जाता है। कुटुम्ब प्यारी अपने परिवार की परंपरा और संस्कृति को अकेले निबाहती है। वह कहती है– ''कोई दूसरा नहीं, आप ही हमें सता रहे हैं। आख़िर आपने भरी बिरादरी में हमारा तमाशा बनाकर ही दम लिया।''[16] इतना होने पर भी वह परिवार की मान–मर्यादा बनाये रखती है। भारतीय संस्कारों के कारण वह पति को भगवान मानती है। वह यह मानती है पति कैसा भी हो परमेश्वर होता है। हम देखते हैं कि कृष्णा जी रचनाओं में कहीं भी भारतीय संस्कार या परम्पराओं को लेकर बेवजह टीका टिप्पणी नहीं मिलती। ''कृष्णा सोबती जी दो चीजों की कभी चिंता नहीं की, वे हैं नैतिक अनैतिक की रूढ़ियों और आर्थिक असुविधाएँ। पुरुष के प्रति किसी भी प्रकार का असम्मानजनक संकेत भी उन्हें यहाँ नहीं मिलता। अपनी ही जिन्दगी को सुलझाने उलझाने बढ़ते लौटते उनके नारी पात्रों के लिए सामाजिक मान्यताएं श्लील–अश्लील, नैतिक–अनैतिक कहीं कुछ नहीं। मुझे कोई जगत याद नहीं आती जहाँ उनके किसी पात्र ने किसी संस्कार, रूढ़ि, मूल्य या मान्यता की आलोचना की हो या उसे लेकर मन में किसी प्रकार का द्वंद्व या दंश पाया हो।''[17]

इस तरह से स्पष्ट है कि कृष्णा जी ने स्त्री जीवन से संबंधित तमाम समस्याओं का चित्रण गंभीरतापूर्वक किया है। स्त्री पात्र अपनी व्यक्तिगत समस्याओं में इतनी उलझी है कि आस–पास की परिस्थितियाँ कैसी है? उससे उसका कोई लेना देना नही है। भले–बुरे का विचार त्याग पत्र स्वयं के लिए लड़ रही है। समाज में स्त्री का इज्जत के नाम पर जो रूढ़िगत परंपरा चली रही है। उसकी परवाह किये बगैर अब स्त्री अपने अस्तित्व की रक्षा स्वयं कर रही है और अवसर आने पर समाज को मुँह तोड़ जवाब भी दे रही है। वो चाहे सामाजिक हो या सांस्कृतिक।

4. स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न : वैचारिक संदर्भ :–

स्त्री का वैचारिक पक्ष एवं स्वतंत्र स्त्री कृष्णा सोबती की रचनाओं में मुखर होकर उभरती है। उनकी स्त्री केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित मात्र नही है। वह विचारशील, आत्मचेतस प्रतिरोधी और अपने अस्तित्व के प्रति सजग व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। ये स्त्रियाँ अपने को स्थापित करती नजर आती है। वे सामाजिक मान्यताओं को यथा स्थिति में स्वीकार नहीं करती, उन पर प्रश्न उठाती है। वे अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेना चाहती हैं। संबंधों में समानता और सम्मान की अपेक्षा रखती हैं। उनकी चेतना निजी नही है। वह सामाजिक स्तर पर भी सक्रिय रहती है।

'ऐ लड़की' की अम्मू वृद्धा होते हुए भी जवान है। वह अपनी बेटी को सहेली समझती है। वह अपने जीवन के अंतिम क्षणों में बेटी को हर बात बता व समझा देना चाहती है। वह कहती है– ''अपने लिए दुःख नहीं' मनाना। निराशा को परे ही रखना। तुम्हारे लिए निश्चित हूँ। न तुम सताई जा सकती हो और न किसी को सताती हो।''[18] अम्मू एक साधारण सी महिला है जिन्होंने अपने जीवन के अनुभवों से बहुत कुछ सीखा है। वह जीवन के दर्शनशास्त्र को सीधे सादे शब्दों में व्यक्त करती हैं– ''जिंदगी में कुछ नोना–नमकीन और कुछ मिश्री– मीठा। इतना ही पछतावा कैसा! सबकी जन्मपत्री चितकबरी ही हुआ करती है। हर्ष–शोक, लाभ–हानि, ऊँच–नीच–सब बारी–बारी अपनी झलक दिखाते हैं। ऐसा किसी के हाथ में नहीं कि फुलझड़ियाँ ही छूटती रहें। सब गर्म–सर्द समय में घुल मिल जाते हैं। इसकी नाकाबंदी ऊपरवाले के सिवाय कोई दूसरा नहीं कर सकता। पर एक बात समझने की है। जो पोत बनाएँगे, वही सागर में उतरेंगे। श्रम करेंगे तो फल पाएंगे। यही उत्स है। जीनेवालों की प्राप्ति।''[19] यह अम्मू की वैचारिक दृष्टि है जिसे वह असहय पीड़ा में भी आशावादी बनाए रखती हैं। स्त्री का वैचारिक स्वरूप यहाँ अस्तित्ववादी चेतना से जुड़ा दिखाई देता है।

कृष्णा जी की स्त्रियाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है। उनमें समाज, संस्कृति और मानवीय संबंधों के प्रति गहरी संवेदना होती है। वह अपने अनुभवों के माध्यम से व्यापक मानव मूल्यों की स्थापना करती है। 'समय–सरगम' की आरण्या साक्षर, समझदार व सुलझे विचारों वाली आधुनिक प्रौढ़ लेखिका है। ''अपने ढंग से जीने वाली मन मानियों की विशेषज्ञ व कृष्णा सोबती के अब तक के नारी पात्रों में सबसे सशक्त अपने जिये हुए पर कहीं कोई प्रश्न नहीं, पश्चाताप नहीं, उदासी का तृण भी नहीं अपितु गर्व।

परिवार–समाज की सबसे मूलभूत एवं महत्वपूर्ण इकाई उसकी चौखट से बाहर पर अपने भीतर। बिल्कुल उतने ही भीतर जिसने अपने आपको बाहर की परेशानियों के चक्रव्यूह में न फंस बाहर से ही चक्रव्यूह की उलझनों को सुलझाने का तार्किक गौरव प्राप्त किया।''[20]

आरण्या वैचारिक चेतना की सशक्त प्रतीक, आधुनिक विचारों वाली महिला है। वह कहती है– ''व्यक्तित्व सिर्फ सुविधाओं से ही नहीं पनपता। वह बनता है समझ और अनुभव से।''[21] जीवन को जी भर कर जी लेने का संतोष उनके चेहरे पर दिखता है। वह कहती हैं– ''इस चेहरे पर सताई हुई रेखाएँ नहीं। समय के साथ उगी पकी हैं।''[22] वह अंतिम सफर के लिए मानसिक रूप से तैयार बैठी है। ''अंतिम पड़ाव वाली भूमिका कभी भी पास आ खड़ी हो। सकती है होगी। उसे होना है। सबकी होती है।''[23] इस तरह से हम देखते हैं कि वैचारिक रूप से स्त्री भावनात्मक और मानसिक आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ती है। यह वही स्त्रियाँ हैं जिनके अस्तित्व को कुचल कर समाज आगे बढ़ रहा था। किन्तु अब स्त्रियाँ अपने अस्तित्व व भावनाओं के प्रति अति सजग हो गई हैं। वह अपनी इच्छाओं को दबाकर नहीं जीती, बल्कि समझकर जीना चाहती है। 'सिक्का बदल गया' की शाहनी लम्बी चौड़ी हवेली की मालकिन है। भारत–पाक विभाजन की स्थितियों ने सब कुछ बदल दिया। पुरखों की हवेली छोड़ उसे जाना होगा। शाहनी के कानों में जैसे आवाज गूँजती है कि देर हो रही है, वह सोचती है वह रोकर नहीं, शान से निकलेगी। पुरखों के घर में वह रानी बनकर आई थी वह इस देहरी को सम्मान से लाँघेगी। ''उसने अपने लड़खड़ाते कदमों को सम्हाल कर दुपट्टे सें आँखें पोंछी और ड्योढ़ी से बाहर हो गई। शाहनी ने दोनों हाथ जोड़ कर अंतिम दर्शन दिया। यही अंतिम प्रणाम था। शाहनी की आँखें फिर कभी इस हवेली को न देख पायेंगी। शाहनी के मन में मैल नही था। जाते समय सबको 'सलामत रहे रब्ब तुम्हें खुशियाँ बक्शे' की दुआएं दे जाती है।''[24] यह दृष्टि स्त्री की वैचारिक गहराई को प्रदान करती है।

इस तरह से हम देखते हें कि कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में वह स्त्री स्वतंत्रता की माँग करती हैं। कृष्णा जी ने कई स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री स्वतंत्रता के समर्थक के रूप में अपना परिचय दिया है। स्त्री कोई पशु या पक्षी नही है जिसे पिंजरे में बांधकर रखा जाय। वह अपनी रचनाओं में स्त्री स्वतंत्रता का प्रबल समर्थन करती हैं।

कृष्णा जी यह अच्छी तरह जानती व समझती हैं कि स्त्री की स्थिति पहले की अपेक्षा सही है। वह अपने प्रति सजग है। अपने सामर्थ्य को जान–समझकर ही आगे बढ़ती है। इसके बावजूद भी वह प्रतिदिन जलाई जा रही है। घरों से निकाली जा रही है। बलात्कार जैसी घटना आम हो गई है। जहाँ एक ओर स्त्री को पुरुष से हीन समझा जाता है वहाँ दूसरी ओर रीति–रिवाज के कारण उसमें असमानता का बीज बोया जा रहा है। कृष्णा जी कहती है– ''समाज में नारी की अस्मिता की लड़ाई की शुरूआत उसकी आत्मबोध की स्वीकृति से ही सम्भव होगी। उसे स्वयं यह स्वीकार करना होगा कि मैं नारी हूँ, नारी ही नहीं मनुष्य भी हूँ और मनुष्यों की तरह इस समाज में जीने का अधिकार मुझे भी है।''[25]

कहा जा सकता है कि स्त्री स्वतंत्रता मानव में प्रस्थापित करने की ऊर्ध्वमुखी चेतना है। स्त्री स्वतंत्रता एक दृष्टि है जो परम्परा के दबाव, संस्कार एवं पूर्वग्रह से मुक्त होकर व्यक्ति के रूप में पहचान हो।

संदर्भ सूची

1. नामवर सिंह, कहानी : नई कहानी।
2. मेरी प्रिय कहानियाँ– अमृतराय, पृ0 101
3. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रतिबिंबित नारी जीवन, डॉ0 सुलोचना अंतरेड्डी, पृ0 35
4. कृष्णा सोबती : सोबती एक सोहबत, पृ0 388
5. कृष्णा सोबती, मित्रो मरजानी, पृ0 64
6. दिलो–दानिश, कृष्णा सोबती, पृ0 85
7. सूरजमुखी अंधेरे के, कृष्णा सोबती, पृ0 96
8. कृष्णा सोबती के उपन्यास में निरूपित नारी समस्या, डॉ0 शाहेनाज जाफर बासमेह, पृ0 299
9. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, डॉ0 गीता सोलंकी, पृ0 57
10. नष्ट लड़की : नष्ट गद्य–तसलीमा नसरीन, पृ0 88–89
11. एक नजर कृष्णा सोबती पर रोहिणी, पृ0 80
12. दिलो–दानिश, कृष्णा सोबती पृ0 98
13. प्रभा खेतान, साक्षात्कार, पृ0 25

14. डॉ0 उषा यादव, हिन्दी की महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में मानवीय संवेदना पृ0 29
15. समय सरगम, कृष्णा सोबती, पृ0 92
16. दिलो–दानिश, कृष्णा सोबती, पृ0 39
17. आदमी की निगाह में औरत कृष्ण सोबती, पृ0 131
18. ऐ लड़की, कृष्णा सोबती, पृ0 49
19. वही, पृ0 34–35
20. आदर्श नहीं यथार्थ : कृष्णा सोबती, डॉ0 सरिता बहुखंडी, पृ0 217
21. समय–सरगम, कृष्णा सोबती, पृ0 64
22. वही, पृ0 8
23. वही
24. कृष्णा सोबती के कथात्मक साहित्य में नारी पात्र, डॉ0 आशा दत्तात्रय कांबले, पृ0 132
25. कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य– डॉ0 ब्रिजित पाल, पृ0 90

◂◂ ▸▸

कॉलेज छात्रों की शैक्षिक अभिप्रेरणा और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन

डॉ. ज्योति कुमारी*

सारांश

शिक्षा मानव विकास का आधार है तथा शैक्षणिक उपलब्धि किसी भी शिक्षण प्रक्रिया की सफलता का प्रमुख सूचक मानी जाती है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि अनेक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है। इनमें शैक्षिक अभिप्रेरणा एक अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। अभिप्रेरणा वह आंतरिक शक्ति है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सक्रिय करती है तथा उसके व्यवहार को दिशा प्रदान करती है। शिक्षा के क्षेत्र में अभिप्रेरणा विद्यार्थियों को अध्ययन, ज्ञानार्जन तथा उपलब्धि की ओर प्रेरित करती है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य कॉलेज छात्रों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा उनकी शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन करना है। अध्ययन में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा रखने वाले छात्र शैक्षणिक उपलब्धि में किस प्रकार बेहतर प्रदर्शन करते हैं। शोध में वर्णनात्मक एवं सहसंबंधात्मक शोध विधि का उपयोग किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट हुआ कि शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध विद्यमान है। जिन छात्रों में अध्ययन के प्रति अधिक प्रेरणा, लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता तथा सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा होती है, उनकी शैक्षणिक उपलब्धि अपेक्षाकृत अधिक होती है।

अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि अभिप्रेरणा छात्रों में आत्मविश्वास, आत्म–अनुशासन तथा अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करती है, जिससे उनकी उपलब्धि में वृद्धि होती है। इसलिए शिक्षकों, अभिभावकों एवं शिक्षा–नीति निर्माताओं को विद्यार्थियों में सकारात्मक शैक्षिक अभिप्रेरणा विकसित करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

शब्द कुंजी : शैक्षिक अभिप्रेरणा, शैक्षणिक उपलब्धि, कॉलेज छात्र, प्रेरणा, अधिगम, उपलब्धि प्रेरणा, उच्च शिक्षा, मनोविज्ञान।

प्रस्तावना

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा न केवल व्यक्ति को ज्ञान प्रदान करती है, बल्कि उसके व्यक्तित्व, दृष्टिकोण, मूल्यों तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों का भी विकास करती है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में शिक्षा सफलता का प्रमुख साधन बन चुकी है। विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि उनके भविष्य, रोजगार, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि किन कारकों के कारण कुछ विद्यार्थी उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हैं जबकि कुछ विद्यार्थी अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर पाते।

शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं, जिनमें बुद्धिलब्धि, अध्ययन आदतें, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, विद्यालयीय सुविधाएँ तथा अभिप्रेरणा प्रमुख हैं। इनमें अभिप्रेरणा एक ऐसा मनोवैज्ञानिक कारक है जो व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में सक्रिय एवं निरंतर प्रयासरत रखता है। यदि विद्यार्थी अध्ययन के प्रति प्रेरित है, तो वह कठिन परिस्थितियों में भी प्रयास जारी रखता है तथा सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक परिश्रम करता है।

अभिप्रेरणा शब्द अंग्रेजी के "Motivation" का हिंदी रूप है। Motivation शब्द लैटिन भाषा के "Movere" शब्द से बना है, जिसका अर्थ है "गति प्रदान करना" या "आगे बढ़ाना"। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अभिप्रेरणा वह आंतरिक अथवा बाह्य शक्ति है जो व्यक्ति को किसी कार्य के लिए प्रेरित करती है तथा उसके व्यवहार को दिशा देती है।

* एम.ए., पी–एच.डी., मनोविज्ञान विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

ई–मेल – krishnajyoti310@gmail.com

शैक्षिक अभिप्रेरणा का तात्पर्य उस प्रेरक शक्ति से है जो विद्यार्थियों को सीखने, अध्ययन करने तथा शैक्षणिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रेरित करती है। यह विद्यार्थियों में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा, उत्कृष्ट प्रदर्शन की आकांक्षा तथा निरंतर प्रयास करने की प्रवृत्ति को विकसित करती है। जिन विद्यार्थियों में शैक्षिक अभिप्रेरणा उच्च होती है, वे अध्ययन के प्रति अधिक गंभीर होते हैं, नियमित रूप से कक्षाओं में उपस्थित रहते हैं तथा शैक्षणिक गतिविधियों में सक्रिय भाग लेते हैं।

शैक्षिक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांत अभिप्रेरणा के महत्व को रेखांकित करते हैं। Maslow (1943) के आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति उसकी प्रेरणा को प्रभावित करती है। McClelland (1961) ने उपलब्धि अभिप्रेरणा (Achievement Motivation) को सफलता प्राप्त करने का महत्वपूर्ण आधार माना। इसी प्रकार Deci और Ryan (1985) के आत्म–निर्धारण सिद्धांत (Self & Determination Theory) के अनुसार आंतरिक अभिप्रेरणा विद्यार्थियों को अधिक प्रभावी एवं स्थायी अधिगम की ओर प्रेरित करती है।

कॉलेज स्तर पर अभिप्रेरणा का महत्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि इस स्तर पर विद्यार्थियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। उन्हें अपने अध्ययन की योजना स्वयं बनानी होती है तथा अपने शैक्षणिक लक्ष्यों को स्वयं निर्धारित करना होता है। ऐसी स्थिति में जिन विद्यार्थियों में उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा होती है, वे अपने समय का बेहतर प्रबंधन करते हैं तथा शैक्षणिक सफलता प्राप्त करते हैं।

वर्तमान समय में तकनीकी विकास, सोशल मीडिया, प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं तथा रोजगार संबंधी चुनौतियों ने विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। कुछ विद्यार्थी इन चुनौतियों को अवसर के रूप में स्वीकार कर अधिक प्रेरित होते हैं, जबकि कुछ विद्यार्थी तनाव, चिंता एवं निराशा के कारण अपनी प्रेरणा खो देते हैं। इसलिए विद्यार्थियों में सकारात्मक अभिप्रेरणा विकसित करना आज की शिक्षा प्रणाली की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है।

अनेक शोध अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य घनिष्ठ संबंध होता है। उच्च अभिप्रेरणा वाले विद्यार्थी अधिक मेहनत करते हैं, लक्ष्य के प्रति समर्पित रहते हैं तथा कठिनाइयों का सामना करने में सक्षम होते हैं। इसके परिणामस्वरूप उनकी शैक्षणिक उपलब्धि भी अधिक होती है।

इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन कॉलेज छात्रों की शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध को समझने का प्रयास करता है। यह अध्ययन शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों की सफलता को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारकों को समझने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

उद्देश्य

1. कॉलेज छात्रों की शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन करना।
2. शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध ज्ञात करना।
3. छात्रों की सफलता में अभिप्रेरणा की भूमिका का विश्लेषण करना।

साहित्य की समीक्षा

McClelland (1961) ने उपलब्धि अभिप्रेरणा को सफलता प्राप्त करने का महत्वपूर्ण निर्धारक माना। उनके अनुसार उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले व्यक्ति चुनौतीपूर्ण कार्यों को पसंद करते हैं तथा सफलता प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करते हैं।

Maslow (1943) ने आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए बताया कि व्यक्ति की प्रेरणा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति से प्रभावित होती है। जब मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, तब व्यक्ति उच्च उपलब्धियों की ओर अग्रसर होता है।

Deci और Ryan (1985) ने आत्म–निर्धारण सिद्धांत के माध्यम से आंतरिक अभिप्रेरणा के महत्व को स्पष्ट किया। उनके अनुसार आंतरिक रूप से प्रेरित विद्यार्थी अधिक प्रभावी ढंग से सीखते हैं तथा उनकी उपलब्धि भी बेहतर होती है।

Pintrich और De Groot (1990) ने अपने अध्ययन में पाया कि प्रेरणा, आत्म–नियंत्रण एवं अधिगम रणनीतियाँ शैक्षणिक उपलब्धि को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं।

Schunk (1991) ने पाया कि आत्म–प्रभावकारिता (Self-Efficacy) एवं प्रेरणा के मध्य घनिष्ठ संबंध होता है तथा ये दोनों मिलकर शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं।

Zimmerman (2002) के अनुसार स्व–नियंत्रित अधिगम एवं अभिप्रेरणा विद्यार्थियों की सफलता के महत्वपूर्ण आधार हैं। उन्होंने बताया कि प्रेरित विद्यार्थी अपने अधिगम की योजना बनाते हैं तथा स्वयं का मूल्यांकन करते हैं।

भारतीय संदर्भ में शर्मा (2016) ने पाया कि उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि निम्न अभिप्रेरणा वाले छात्रों की तुलना में अधिक थी। कुमार एवं वर्मा (2019) ने भी अपने अध्ययन में शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं उपलब्धि के मध्य सकारात्मक सहसंबंध पाया।

उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा शैक्षणिक उपलब्धि का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है तथा दोनों के मध्य सकारात्मक संबंध पाया जाता है।

कार्यप्रणाली

शोध की प्रकृति

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक (Descriptive) एवं सहसंबंधात्मक (Correlational) शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन का उद्देश्य कॉलेज छात्रों की शैक्षिक अभिप्रेरणा तथा शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य संबंध का विश्लेषण करना है। इस शोध में यह जानने का प्रयास किया गया कि विद्यार्थियों की प्रेरणा का स्तर उनकी शैक्षणिक सफलता को किस सीमा तक प्रभावित करता है।

न्यादर्श

अध्ययन के लिए 100 कॉलेज छात्रों का चयन दैव निदर्शन (Random Sampling Method) द्वारा किया गया। चयनित छात्र विभिन्न संकायों जैसे कला, विज्ञान एवं वाणिज्य से संबंधित थे। अध्ययन में छात्र एवं छात्राओं दोनों को सम्मिलित किया गया ताकि निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय एवं व्यापक हों।

शोध उपकरण

अध्ययन के लिए निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग किया गयाकृ

1. शैक्षिक अभिप्रेरणा मापनी (Educational Motivation Scale) – छात्रों के अभिप्रेरणा स्तर का मापन करने हेतु।
2. शैक्षणिक उपलब्धि अभिलेख (Academic Achievement Record) – छात्रों के पिछले सेमेस्टर के परीक्षा परिणामों एवं अंकों के आधार पर।
3. व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र (Personal Information Sheet) –' छात्रों की सामान्य जानकारी एकत्रित करने हेतु।

आंकड़ा संकलन प्रक्रिया

शोधकर्ता द्वारा चयनित छात्रों को अध्ययन के उद्देश्य से अवगत कराया गया तथा उनकी सहमति प्राप्त की गई। इसके पश्चात शैक्षिक अभिप्रेरणा मापनी प्रशासित की गई। छात्रों के शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी आंकड़े कॉलेज अभिलेखों से प्राप्त किए गए। प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया।

सांख्यिकीय तकनीक

अध्ययन में निम्नलिखित सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया गयाकृ

- माध्य (Mean)
- प्रतिशत (Percentage)
- मानक विचलन (Standard Deviation)
- सहसंबंध गुणांक (Pearson's Correlation Coefficient)

आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण

सारणी 1 : छात्रों के शैक्षिक अभिप्रेरणा स्तर का वर्गीकरण

अभिप्रेरणा स्तर	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
उच्च	40	40
मध्यम	42	42
निम्न	18	18
कुल	**100**	**100**

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि 40ः छात्रों में उच्च शैक्षिक अभिप्रेरणा, 42ः में मध्यम तथा 18ः में निम्न अभिप्रेरणा स्तर पाया गया। अधिकांश छात्र मध्यम एवं उच्च अभिप्रेरणा श्रेणी में पाए गए।

सारणी 2 : शैक्षणिक उपलब्धि का वर्गीकरण

उपलब्धि स्तर	छात्रों की संख्या	प्रतिशत
उच्च	38	38
मध्यम	45	45
निम्न	17	17
कुल	**100**	**100**

व्याख्या : सारणी से ज्ञात होता है कि 38% छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि उच्च, 45% की मध्यम तथा 17% की निम्न स्तर की थी।

सारणी 3 : शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि	0.74

व्याख्या : प्राप्त सहसंबंध गुणांक ($r = 0.74$) यह दर्शाता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य उच्च धनात्मक संबंध पाया गया। अर्थात् अभिप्रेरणा बढ़ने के साथ शैक्षणिक उपलब्धि में भी वृद्धि होती है।

सारणी 4 : उच्च एवं निम्न अभिप्रेरणा वाले छात्रों की औसत उपलब्धि

समूह	औसत अंक (%)
उच्च अभिप्रेरणा	76.8
निम्न अभिप्रेरणा	58.4

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि उच्च अभिप्रेरणा वाले छात्रों का औसत प्रदर्शन निम्न अभिप्रेरणा वाले छात्रों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से बेहतर था।

परिणाम

अध्ययन से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं–

1. अधिकांश छात्रों में मध्यम से उच्च स्तर की शैक्षिक अभिप्रेरणा पाई गई।
2. अधिकांश छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि मध्यम स्तर की थी।
3. शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य 0.74 का उच्च धनात्मक सहसंबंध पाया गया।
4. उच्च अभिप्रेरणा वाले छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि निम्न अभिप्रेरणा वाले छात्रों की तुलना में अधिक थी।
5. अभिप्रेरणा विद्यार्थियों की अध्ययन में रुचि, आत्मविश्वास तथा लक्ष्य–उन्मुख व्यवहार को प्रभावित करती है।
6. अध्ययन में यह भी पाया गया कि प्रेरित छात्र नियमित रूप से कक्षाओं में उपस्थित रहते हैं तथा अध्ययन गतिविधियों में अधिक सक्रिय भाग लेते हैं।
7. शैक्षणिक उपलब्धि के विकास में अभिप्रेरणा एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कारक है।

विवेचना

प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट होता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। जिन छात्रों में अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृ ष्टिकोण, सफलता प्राप्त करने की इच्छा तथा लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता पाई गई, उनकी शैक्षणिक उपलब्धि भी बेहतर रही।

अध्ययन में प्राप्त 0.74 का सहसंबंध गुणांक यह दर्शाता है कि अभिप्रेरणा एवं उपलब्धि के मध्य मजबूत धनात्मक संबंध विद्यमान है। यह निष्कर्ष McClelland (1961) की उपलब्धि अभिप्रेरणा अवधारणा का समर्थन करता है, जिसके अनुसार सफलता प्राप्त करने की इच्छा व्यक्ति को अधिक प्रयास करने के लिए प्रेरित करती है।

अध्ययन के निष्कर्ष Deci एवं Ryan (1985) के आत्म–निर्धारण सिद्धांत से भी मेल खाते हैं। उनके अनुसार आंतरिक अभिप्रेरणा विद्यार्थियों को स्व–प्रेरित अधिगम की ओर अग्रसर करती है, जिससे उनकी उपलब्धि में वृद्धि होती है। वर्तमान अध्ययन में भी पाया गया कि जिन छात्रों में अध्ययन के प्रति आंतरिक रुचि एवं आत्म–प्रेरणा थी, वे अधिक सफल रहे।

शोध से यह भी ज्ञात हुआ कि प्रेरित विद्यार्थी अध्ययन में अधिक समय देते हैं, नियमित रूप से कार्य पूर्ण करते हैं तथा कठिनाइयों का सामना करने में सक्षम होते हैं। इसके विपरीत निम्न अभिप्रेरणा वाले छात्रों में अध्ययन के प्रति उदासीनता, अनियमितता तथा आत्मविश्वास की कमी देखी गई।

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले अनेक कारक कार्यरत हैं। इनमें पारिवारिक समर्थन, शिक्षक का व्यवहार, सीखने का वातावरण, साथियों का प्रभाव तथा भविष्य की रोजगार संभावनाएँ महत्वपूर्ण हैं। यदि छात्रों को सकारात्मक वातावरण प्राप्त हो, तो उनकी अभिप्रेरणा में वृद्धि होती है तथा वे बेहतर शैक्षणिक उपलब्धि प्राप्त करते हैं।

कॉलेज स्तर पर छात्रों में आत्मनिर्भरता अपेक्षाकृत अधिक होती है, इसलिए उनकी सफलता मुख्य रूप से उनकी स्वयं की प्रेरणा पर निर्भर करती है। अतः शिक्षकों एवं अभिभावकों को छात्रों की प्रेरणा बनाए रखने हेतु निरंतर प्रयास करना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि शैक्षिक अभिप्रेरणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक संबंध विद्यमान है। जिन छात्रों में उच्च स्तर की शैक्षिक अभिप्रेरणा होती है, वे शैक्षणिक उपलब्धि में बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि अभिप्रेरणा छात्रों को अध्ययन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करती है, उनके आत्मविश्वास को बढ़ाती है तथा उन्हें अपने शैक्षणिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयासरत रखती है।

शिक्षकों, अभिभावकों एवं शैक्षणिक संस्थानों को विद्यार्थियों में सकारात्मक अभिप्रेरणा विकसित करने हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान करना चाहिए। प्रेरक शिक्षण विधियों, परामर्श सेवाओं तथा उपलब्धि–आधारित प्रोत्साहन कार्यक्रमों के माध्यम से छात्रों की अभिप्रेरणा को बढ़ाया जा सकता है। इससे उनकी शैक्षणिक उपलब्धि में सुधार होगा तथा शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि होगी।

संदर्भ सूची

Bandura, A. (1997). *Self-efficacy: The exercise of control*. W. H. Freeman.

Deci, E. L., & Ryan, R. M. (1985). *Intrinsic motivation and self-determination in human behavior*. Plenum Press.

Kumar, R., & Verma, S. (2019). Educational motivation and academic achievement among college students. *International Journal of Educational Research, 7*(2), 55–63.

Maslow, A. H. (1943). A theory of human motivation. *Psychological Review, 50*(4), 370–396. https://doi.org/10.1037/h0054346

McClelland, D. C. (1961). *The achieving society*. Van Nostrand.

Pintrich, P. R., & De Groot, E. V. (1990). Motivational and self-regulated learning components of classroom academic performance. *Journal of Educational Psychology, 82*(1), 33–40. https://doi.org/10.1037/0022-0663.82.1.33

Schunk, D. H. (1991). Self-efficacy and academic motivation. *Educational Psychologist, 26*(3–4), 207–231. https://doi.org/10.1080/00461520.1991.9653133

Sharma, P. (2016). Educational motivation and academic achievement of undergraduate students. *Indian Journal of Educational Studies, 5*(1), 21–29.

Zimmerman, B. J. (2002). Becoming a self-regulated learner: An overview. *Theory Into Practice, 41*(2), 64–70. https://doi.org/10.1207/s15430421tip4102_2

हिंदी सिनेमा में देश–प्रेम की अभिव्यक्ति

विपिन सिंह*

सार -

हिंदी सिनेमा ने हमेशा देश-प्रेम और समाज के विचारों को प्रकट कर प्रतिफलित किया है। देश-प्रेम, जो किसी भी देश के लिए गौरव, सामाजिक एकता और संस्कृति का प्रतीक माना जाता हैं। उसमें हिंदी सिनेमा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिंदी सिनेमा के माध्यम से देश-प्रेम और समाज का संबंध एक दूसरे से ऐसे जुड़ा हुआ है दोनों गतिशील और सजीव दिखाई देते है। हिंदी सिनेमा में बन रही देश-प्रेम जैसी फिल्में समाज को देश पर गर्व करने का एक माध्यम है जिससे समाज में सामाजिक एकजुटता और धर्मनिरपेक्ष राज्य का गठन देखने को मिलता हैं ।

इस शोध आलेख में पूरब और पश्चिम (1970), बॉर्डर (1997) और ग़दर:एक प्रेम कथा (2001) जैसी फिल्मों का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर उनमें दिखाए गए देश-प्रेम के द्वारा समाज के विचारों और स्थितियों को जानने की कोशिश की गई है। इस शोध आलेख में जिस स्थिति का प्रस्तुतिकरण किया गया हैं। उसका मुख्य विषय देश-प्रेम है। देश-प्रेम हो या देशभक्ति हमारे समाज के लिए हमेशा से एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा हैं। हिंदी सिनेमा में देश-प्रेम आधारित अनेक फिल्मों का निर्देशन हुआ है। जिसका उद्देश्य देश की स्थितियों को जानना और समझना है । इस शोध आलेख से हमें पता चलता है कि कैसे हिंदी सिनेमा ने देश-प्रेम, सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय एकता और सौहार्द के भाव को समाज तक पहुंचाया है। हिंदी सिनेमा ने युवाओं को अपनी देशभक्तिपरक फिल्मों से प्रभावित किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि हिंदी सिनेमा समाज में देश-प्रेम की भावना को संचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बीज शब्द : देश-प्रेम, सिनेमा, सामाजिक एकता, संस्कृति, धर्म निरपेक्षता, सांस्कृतिक गौरव।

सिनेमा अपने आप में ही एक 'नए यथार्थ' का आरंभ है। हिंदी सिनेमा हमारी संस्कृति का हिस्सा है। हमारे जन-जीवन को अगर कोई कला व्यापक स्तर तक प्रभावित कर पाई तो वह सिनेमा ही है। सिनेमा को एक कला के रूप में देखा जाता है-"**सिनेमा न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह समाज को दिशा देने और विचारधारा को आकार देने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है।**"[1] फिल्मकार सत्यजीत रे के शब्दों में- **"फिल्म छवि है, फिल्म शब्द है, फिल्म गीत है, फिल्म नाटक है, फिल्म कहानी है, फिल्म संगीत है फिल्मों में मुश्किल से एक मिनट का टुकड़ा भी इन बातों का एक साक्ष्य दिखा सकता है"**[2] सिनेमा सिर्फ एक आनंद तक ही सीमित नहीं है। वह लोगों के अंदर सोचने और विचार उत्पन्न करने की क्षमता का भी विकास करता है। सिनेमा समाज को वैचारिक और सैद्धांतिक रूप से भी मजबूती प्रदान करता है। सिनेमा सबसे लोकप्रिय कला के माध्यम के रूप में समाज के सामने स्वयं को प्रस्तुत करता है। सिनेमा में समाज का कोई भी विचार या सिद्धांत एक कला के रूप में सामने आता है क्योंकि सिनेमा में सभी कलाओं की विधा समुचित होती है। अगर हम देखें तो हिंदी सिनेमा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, देशभक्ति, परक फिल्मों को लेकर समाज के सामने प्रस्तुत हुआ। फिल्म समीक्षक सुभाष सेतिया कहते हैं कि- "**भारतीय सिनेमा देश के सामने जन-जीवन से इतना गहरा गूंथा हुआ है की इसके बिना समाज गतिशील और जीवंत हो ही नहीं सकता। इस समय फिल्म में जिस तरह के रचनात्मक मोड़ दिखाई दे रहे हैं उनसे आशा बंधती है कि भारतीय सिनेमा न केवल देश के जन मानस में**

---

* शोधार्थी– हिंदी विभाग, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली
Mobile: +91-9794943087, Email : ssinghvipin098@gmail.com

अपनी जड़ों को और गहरा बनाएगा बल्कि विश्व मंच पर भारत की छवि को दैदीप्यमान करने में भी अपना योगदान बढ़ायेगा।"[3]

"भारत में सिनेमा एक महत्वपूर्ण माध्यम है, इसकी दृश्य कथात्मक शक्ति और पारसी रंगमंच, लोक नाट्य परंपराओं, महाकाव्य मौखिक कथाओं और पौराणिक एवं धार्मिक कहानियों जैसे अन्य लोकप्रिय सांस्कृतिक रूपों से इसकी निकटता के कारण भारतीयता पर जोर देकर, हिंदी फिल्मों को राष्ट्रवाद का प्रतीक दिखाया गया है: फिर भी, अपनी कहानियों में इसके विभिन्न अभिव्यक्तियों को प्रतिबिंबित करके, उन्होंने राष्ट्रीय पहचान की वैकल्पिक, अधिक समावेशी और उदार अवधारणाओं को भी प्रस्तुत किया है।"[4] हिंदी सिनेमा में देश-भक्ति या देश-प्रेम एक ऐसा महत्वपूर्ण विषय हैं, जो समाज को प्रत्येक काल से अपनी और आकर्षित करता आ रहा है। लेकिन प्रत्येक काल में समय के साथ-साथ फिल्मों में देश-प्रेम को समाज में प्रस्तुत करने का तरीका बदलता जा रहा है। जब हिंदी सिनेमा का उद्भव हो रहा था उस वक्त भारत अंग्रेजों के अधीन था। उस समय देश के सामने अनेक तरह की कुरीतियां उत्पन्न हो रही थी। यही कारण रहा कि अंग्रेजी सरकार यह नहीं चाहती थी कि ऐसी फिल्म बने जिससे भारत के लोगों में स्वतंत्रता की भावना जागृत हो और देश-प्रेम की भावना का संचार हो। हिंदी सिनेमा में देश- प्रेम जैसी फिल्म देश के प्रति व्यक्तियों की पहचान, समर्पण और सामाजिक एकता को बढ़ावा देती है, लेकिन पिछले कुछ समय से हिंदी सिनेमा में देश-प्रेम जैसी फिल्मों के स्वरूप बदले हुए दिखाई देते हैं। **"भारतीय सिनेमा में राष्ट्रवाद का प्रभाव व्यापक और गहरा रहा है। राष्ट्रवाद केवल एक राजनीतिक विचारधारा नहीं, बल्कि यह उस भावनात्मक जुड़ाव का प्रतीक है जो किसी व्यक्ति या समुदाय को उनके राष्ट्र से जोड़ता है।"[5]** हिंदी सिनेमा के लिए देश प्रेम एक ऐसा विषय था जो दशकों से देश के लोगों को एक साथ जोड़ने का काम कर रहा था। अगर हिंदी सिनेमा में देशभक्तिपरक फिल्मों की बात की जाए तो वह हर पीढ़ी में युवाओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। युवाओं पर सबसे ज्यादा देशभक्ति फिल्मों का ही प्रभाव पड़ता है युवा देशभक्ति फिल्मों के माध्यम से ही देश-प्रेम को समझते और सीखते हैं। वह देश के अतीत, गौरव, स्वतंत्रता आदि के बारे में फिल्मों के माध्यम से जानते हैं।

हिंदी सिनेमा में राष्ट्र-प्रेम को जिस तरह से दिखाया गया वह सिर्फ मनोरंजन ना होकर देश की परिस्थितियों को जन समान्य तक पहुंचाने का एक प्रयास भी है। और हिंदी सिनेमा के माध्यम से यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस तरह से समाज में लोगों के रगों में देश प्रेम के भाव संचारित हो रहे हैं। हिंदी सिनेमा में कई विषयों पर फिल्में बनी लेकिन शुरुआती दिनों से ही इसका झुकाव देश-प्रेम आधारित फिल्मों में रहा। जिसको सिनेमा ने समाज के सामने प्रकट किया। ऐसी बहुत सी फिल्में है जो देश-प्रेम को अति उत्तम रूप से प्रस्तुत करती है जिनमें से कुछ लोकप्रिय फिल्में इस प्रकार हैं **पूरब और पश्चिम (1970), बॉर्डर (1997), ग़दर: एक प्रेम कथा (2001)।** यह ऐसी फिल्में है जो समाज को अपनी ओर आकर्षित करती है तथा देश- प्रेम के भाव को जागृत और संचारित करती हैं।

पूरब और पश्चिम 1970 फिल्म मनोज कुमार के निर्देशन और लेखन पर बनी देशप्रेम की फिल्म है। इस फिल्म को सिर्फ देश के प्रति प्रेम को लेकर प्रदर्शित नहीं किया गया बल्कि यह हमारे देश की संस्कृति और परंपरा पर गर्व करने का एक संदेश भी देती है। जिसमें फिल्म का नायक भारत जो कि पूरे भारत देश के प्रतीक के रूप में समाज के सामने दिखाया गया है। वह पढ़ाई करने के उद्देश्य से लंदन जाता है और वहां रह रहे भारतीयों को पश्चिमी सभ्यता में ओत-प्रोत देखकर वह बहुत विचलित हो जाता है। नायक भारत जब लंदन पहुंचता है तो वहां वह अपने पिता के कॉलेज मित्र के घर रुकता है। जहां उसका व्यवहार उनकी बेटी प्रीति से हो जाता है। प्रीति भोग विलास में लिप्त लड़की है। जिसे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में कुछ ज्ञान नहीं रहता, वह शराब पीती है, धूम्रपान करती है और ऐसी ही अन्य गैर-भारतीय कार्यों को करती है। नायक भारत उसे भारत देश की अप्रतिम सभ्यता एवं संस्कारों से रूबरू कराता है और धीरे-धीरे प्रीति को अपने

संस्कारों का महत्व समझ में आता है। उसके बाद नायक भारत उससे अपने प्रेम का इजहार करता है। प्रीति सभी पश्चिमी संस्कारों का त्याग करती है और आदर्श भारतीय नारी के रूप में नजर आने लगती है। फिल्म के अंत में नायक भारत सभी परिजनों की आज्ञा से प्रीति को भारत देश वापस ले आता है।

इस फिल्म में देश प्रेम को इतने गहरे स्तर से दिखाया गया है कि वहां रह रहे गैरभारतीय मूल्य के लोगों में भी देश-प्रेम का अलख जगने लगता है। फिल्म में एक संवाद हमारे सामने आता है जिसमें नायक भारत कुमार भारत देश की वैभवशाली संस्कृति के गौरव को बताते हुए कहता हैं कि -"**अपने यहां की मिट्टी की खुशबू है ना... वह तो अजनबी लोगों की सांसों में भी संस्कार भर देती है।"**[6] भारत देश की मिट्टी की खुशबू मात्र से ही भारतीय संस्कारों का प्रस्फुटन होने लगता है। नायक भारत कुमार का यह संवाद उनके हृदय में उपस्थित देश-प्रेम का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह फिल्म सिर्फ देश की याद को ही देश-प्रेम नहीं मानती बल्कि देश पर गर्व करना भी सिखाती है। विदेश में अन्य भौगोलिक क्षेत्र के लोगों के समक्ष यह बात भारत कुमार अपने देश का गौरव गान करके एक गीत के माध्यम से कहता है कि -

"जब जीरो दिया मेरे भारत ने
भारत ने मेरे भारत ने
दुनिया को तब गिनती आई
...है प्रीत जहां की रीत सदा
मैं गीत वहीं कई गाता हूं
भारत का रहने वाला हूं
भारत की बात सुनाता हूं।"[7]

इस तरह से फिल्म में गीत के माध्यम से देश-प्रेम का स्वरूप देखने को मिलता है। भारत कुमार देश के प्रति बलिदान को देश-प्रेम की उच्चतम कसौटी मानता है वह कहता है - **"देश के लिए मरने वाला कभी नहीं मरता।"**[8] अर्थात जो देश के हित के लिए प्राण त्यागता है वह अमर हो जाता है। शुरुआती दौर के सिनेमा में यह फिल्म देश-प्रेम के एक उत्कृष्ट उदाहरण के स्वरूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है।

बॉर्डर 1997 जे पी दत्ता के द्वारा निर्देशित की गई फिल्म है। 1971 में भारत और पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित यह एक देशभक्तिपरक फिल्म है जिसमें राजस्थान के एक छोटे से क्षेत्र लोंगेवाला में हुई लड़ाई को दिखाया गया है। इस कहानी की शुरुआत में दिखाया गया है कि भारतीय सेना के मेजर कुलदीप सिंह के नेतृत्व में लगभग 120 सैनिक राजस्थान के लोंगेवाला पोस्ट पर तैनात है और उस पूरे बटालियन में तैनात सिपाहियों की अलग-अलग कहानियों से फिल्म की शुरुआत होती है। इस फिल्म में अलग-अलग स्थान से आए सिपाहियों के बीच देश-प्रेम और उनके रिश्तों को दिखाया गया है। इस फिल्म में सिपाहियों की पारिवारिक कहानियों को भी दिखाया गया। जिसमें किसी सैनिक की नई-नई शादी हुई है, किसी की मां बीमार है, तो किसी को अपने घर की याद सताती है यह सब जब एक साथ मिलते हैं तो देश-भक्ति और भावनात्मक जुड़ाव को फिल्म के द्वारा समाज में दिखाया जाता है। लोंगेवाला पोस्ट पर पाकिस्तान सेना के कुछ सैनिक भारी टैंकों के साथ हमला कर देते हैं। उसके जवाब में भारतीय सेना पाकिस्तानी सेना पर हमला कर देती है और पूरी रात भारतीय सेना बहादुरी से लड़ाई करती है। देश-प्रेम और बलिदान को त्याग मानकर मेजर कुलदीप सिंह देश की रक्षा को लेकर कहते हैं कि- "**हम तो किसी दूसरे की धरती पर नजर भी नहीं डालते हैं ... लेकिन इतने नालायक बच्चे भी नहीं है कि कोई हमारी धरती मां पर नजर डालें और हम चुपचाप देखते रहे।**"[9]

यह फिल्म देश पर सर्वस्व लुटाने वाली भावनाओं को प्रस्तुत करती है फिल्म की शुरुआत ही- " **मेरी आन मेरी शान मेरी जान हिंदुस्तान ओ हो "**[10] गीत से होती है फिल्म यह दर्शाती है कि भले ही सबके जीवन

अलग है परिस्थितियों अलग है लेकिन देश के समक्ष सब एक है अपनी निजी जीवन को त्याग कर सभी सिपाही अपने मातृभूमि की रक्षा के लिए जीवन त्यागने को तैयार है यह फिल्म देशवासियों में देश प्रेम की भावना जगाने के उद्देश्य से सबसे लोकप्रिय फिल्म साबित होती है।

ग़दर:एक प्रेम कथा 2001 अनिल शर्मा के द्वारा निर्देशित की गई फिल्म है। यह फिल्म 1947 में हुए विभाजन के दौरान हुई हिंसा से शुरू होती है। यह कहानी एक ट्रक ड्राइवर तारा सिंह और सकीना की प्रेम कहानी को केंद्र में रखकर चलती है। तारा सिंह और सकीना एक दूसरे को जानते हैं और धीरे-धीरे उनकी दोस्ती हो जाती है। सकीना के कॉलेज से विदा होने के समय तारा उसे एक छोटा ताजमहल भी देता है लेकिन विभाजन के लिए हो रहे दंगों की वजह से वह पाकिस्तान नहीं जा पाती और उन दंगों की चपेट में आ जाती है। तारा उसे वहां से बचाता है और उसे बचाने के लिए उससे शादी करता है। इसी दौरान दोनों में प्रेम पनपने लगता है और कुछ सालों के बाद उनका एक बेटा जसप्रीत भी हो जाता है। 7 साल बाद सकीना को पता चलता है कि उसका परिवार जिंदा है और उसके पिता पाकिस्तान में मेयर हैं । सकीना उनसे मिलने अकेले जाती है। जहां उसके माता-पिता उसकी दूसरी शादी कराना चाहते हैं। सकीना के वापस न आने पर तारा उसकी खोज में अपने बेटे जसप्रीत के साथ पाकिस्तान पहुंच जाता है और वहां सकीना से मिलकर उसे भगा ले जाता है लेकिन सकीना के पिता को यह पता चल जाता है और एक दूसरे के साथ हुई झड़प में सकीना के सीने में गोली लग जाती है। अंत में मेयर साहब को सकीना के प्रति तारा के प्रेम का अंदाजा होता है और उनका दिल पिघल जाता है और वह तारा को अपना दामाद स्वीकार कर लेते हैं।

इस फिल्म की पृष्ठभूमि विभाजन की है। जहां हिंदू मुसलमान के ह्रदय में नफरत भरी हुई है। कहानी में असली देश प्रेम तब दिखाई देता है। जब तारा पाकिस्तान जिंदाबाद तो कहता है लेकिन हिंदुस्तान मुर्दाबाद कहने से मना कर देता है वह कहता है -"**अशरफ अली आपका पाकिस्तान जिंदाबाद है इससे हमें कोई एतराज नहीं लेकिन हमारा हिंदुस्तान जिंदाबाद है जिंदाबाद था और जिंदाबाद रहेगा।**"[11] इसी में एक प्रसंग और भी आता है जब विभाजन के विरोध में तारा कहता है -"**यह मुल्क है कोई खेत नहीं जो यूं ही बढ़ जाएगा**"[12] फिल्म में शुरुआत से अंत तक देश-प्रेम की झांकियां दिखाई देती हैं। तारा का किरदार देशभक्ति का किरदार है लेकिन सकीना पाकिस्तानी होते हुए भी हिंदुस्तान को अपना घर मानती है यह फिल्म देश-प्रेम के एक सर्वोत्तम उदाहरण की तरह अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है।

निष्कर्ष - हिंदी सिनेमा में देश-प्रेम केवल एक भावना के रूप में नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज को एकजुट करने और अपनी राष्ट्रीय पहचान पर गर्व करने के लिए प्रेरित करता है। हिंदी सिनेमा में देश-प्रेम की अभिव्यक्ति कालानुसार बदलती रही है, शुरुआती दौर में देशप्रेम ब्रिटिश शासन के खिलाफ बगावत के रूप में थी, उसके बाद वह अपने देश की सुरक्षा में दुश्मनों से संघर्ष के रूप में नज़र आई और आज देश-प्रेम अपने ही देश की कुसंगतियों को दूर करने के रूप में नज़र आती है। कभी राष्ट्र पर गर्व तो कभी राष्ट्र के प्रति नैतिक जिम्मेदारी के रूप में सिनेमा समाज के ह्रदय में देश के प्रति गर्व, सम्मान और समर्पण की भावना को प्रस्फुटित करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी सिनेमा देश के विकास में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में नज़र आता है, जो सिर्फ मनोरंजन का साधन मात्र नहीं है बल्कि देश को एकजुट, प्रेरित और संवर्धित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिंदी सिनेमा देश के निर्माण में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में नज़र आता है, और आगे आने वाले समय में भी यह युवाओं को देश की संस्कृति, सभ्यता और संस्कारों से परिचय कराता रहेगा और उन्हें देश-प्रेम के लिए प्रेरित करता रहेगा।

संदर्भ सूची-

1. आशीष राजाध्यक्ष और विलेमेन पॉल, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा, नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स, 1999, पृ. 120-135.
2. सत्यजीत रे: वसुधा, प्रहलाद अग्रवाल (अतिथि संपादक), अंक 81, पृष्ठ 12.
3. सुभाष सेतिया: जीवन में गहरे पैठ है सिनेमा, आजकल, अक्टूबर 2012, पृष्ठ 47.
4. अंजारिया, यू. (2021). बॉलीवुड को समझना: हिंदी सिनेमा का व्याकरण रूटलेज.
5. ज्योतिका दत्ता, सिनेमा और समाज: भारतीय फिल्मों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य, मुंबई: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007, पृ. 85-102.
6. पूरब और पश्चिम , 1970, निर्देशक - मनोज कुमार.
7. वही.
8. वही.
9. बॉर्डर, 1997, निर्देशक - जे पी दत्ता.
10. वही.
11. गदर: एक प्रेम कथा, 2001, निर्देशक -अनिल शर्मा.
12. वही.

स्वतंत्रता संग्राम के लोकगीतों में संघर्ष का स्वर

रितिक राजपूत*

आरंभिक स्वाधीनता आंदोलन में चेतना के स्वरूप के साथ-साथ विद्रोह का इतिहास भी बहुत लंबा है यह इतिहास विभिन्न दृष्टिकोण विचारधाराओं और उद्देश्यों से 1857 के विद्रोह की व्याख्या करता है ।आरंभिक इतिहास व साहित्य उपनिवेशवादी दृष्टि से लिखा गया बाद में राष्ट्रवादी दृष्टि से।

20वीं सदी में मार्क्सवादी और सबाल्टर्न दृष्टियों से भी 1857 के संघर्ष के इतिहास लिखा गया। इन सभी इतिहासों में 1857 के संघर्ष नायको, सेनानियों, नवाबों, राजाओं का उल्लेख है लेकिन 1857 के जन आंदोलन में शहीद हुए वीर सपूतों का जिक्र मात्रा भी नहीं है।

उस जन-युद्ध में भारत के हिंदुओं और मुसलमानों, पुरुषों और स्त्रियों ने अंग्रेजी राज के विरुद्ध युद्ध किया था। उसमें सभी जातियों, पेशों और हैसियत के लोग शामिल थे। यह बात उस युद्ध से संबंधित लोकगीतों, गीतों और साहित्य के विभिन्न रूपों के माध्यम से हमारे सामने आती है। इस जन-युद्ध से यह भी साबित होता है कि हर वर्ग और हैसियत के लोगों को देशभक्त होने का अधिकार है। इतिहास तथ्यों की चर्चा करता है, लेकिन दारुण और दर्दनाक स्मृतियों की नहीं, जबकि पराजित और पराधीन मनुष्यों की स्मृति बहुत लंबी होती है। ऐसी स्मृतियों को सजीव, प्रभावशाली और दीर्घजीवी बनाने का काम साहित्य करता है, विशेष रूप से लोकसाहित्य; क्योंकि लोकसाहित्य की रचना लोक करता है और इस तरह वह अपनी स्मृतियों को दीर्घजीवी बनाता है। 1857 से संबंधित लोकगीतों और लोकभाषाओं में लिखे गीतों में अनेक प्रकार की स्मृतियाँ व्यक्त हुई हैं। अंग्रेजी राज से लोक के संघर्ष और अंग्रेजी उपनिवेशवाद की लूट, दमन और तबाही के अनुभवों की स्मृतियाँ लोकगीतों में ही है।

इन आंदोलनों में चेतन सर को सुधार करने के लिए विविध तारों का प्रयोग हुआ जिस आंदोलन को एकरूपता व शक्ति मिली ।इसके उपरांत जन समुदाय के लिए विभिन्न क्रांतिकारियों व साहित्यकारों ने लोकगीतों के माध्यम से आंदोलन में प्रकाश पुंज का कार्य किया।

उन लोकगीतों से जाहिर होता है कि भारतीय जनता ईस्ट इंडिया कंपनी के कुराज के कारण तबाही, बर्बादी और यातना की जिस दारुण दशा को झेल रही थी, उससे मुक्ति और सुराज की स्थापना के लिए वह युद्ध कर रही थी। सन् 1857 के विद्रोह के एक सेनानी कुँवर सिंह से संबंधित एक लोकगीत में उनकी राजनीतिक आकांक्षा और उसके अधूरा रहने का दुख इस तरह व्यक्त हुआ है :

कुल्ही गुनलका रामा, मटिया में मिलि गइले
नाहीं लेबे पवलीं हम सुराज

'सुराज' हिंदी की विभिन्न लोकभाषाओं का अत्यंत लोकप्रिय शब्द है। यह जितना लोकप्रिय है उतना ही पुराना भी है। तुलसीदास के समय में यह बहुत लोकप्रिय रहा होगा, इसीलिए उन्होंने रामचरितमानस में इसका कम से कम पाँच बार प्रयोग किया है। अयोध्या कांड में सुराज शब्द का प्रयोग तीन बार है :

(क) जाइ सुराज सुदेश सुखारी।
होहिं भरत गति तेहि अनुहारी॥
(ख) राम बास बन संपतिभ्राजा।

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
9634596279, ritikrajput2511@gmail.com

सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
(ग) अलिगन गावत नाचत मोरा।
जनु सुराज मंगल चहु ओरा॥

फिर किष्किंधा कांड में सुराज शब्द का प्रयोग दो बार है :

(घ) अर्क जवास पात बिनु भयऊ।
जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
(ङ) विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा।
प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥

लोकगीतों के स्वरूप में कई क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है इसमें प्रमुख रूप से -A

- भोजपुरी
- बुंदेली
- अवधी
- ब्रज
- छत्तीसगढ़ी
- मालवी
- गोंडी
- हरियाणवी
- कोरवी
- राजस्थानी
- खड़ी बोली आदि का प्रयोग हुआ है

हाल की खोजों से यह बात सामने आई है कि उस युद्ध में भारतीय पक्ष की पराजय का एक बड़ा कारण असंख्य भारतवासियों का देशद्रोह था, जिसका उल्लेख इस लोकगीत में है। गदर के गद्दारों का उल्लेख एक और लोकगीत में भी है। गदर के गद्दारों की चर्चा इस भोजपुरी गीत में की गई है :-

रामा देशवा के कुछ त अदिमिया रे ना॥
रामा हो गइले देशद्रोहिया रे ना।
रामा मिलि गइले आयर के संगवा रे ना॥
रामा भारी दल लेके उनके सथवा रे ना।
रामा आरा पर कइले चढ़इया रे ना॥

गदर के गद्दारों के बारे में एक अवधी लोककवि के गीत में कहा गया है :

भाई बन्द और कुटूम कबीला सबका करौं सलामा।
तुम तो जाय मिल्यो गोरन ते हमका हैं भगवाना॥

एक कौरवी लोकगीत में गदर के कुछ गद्दारों को कुछ इस तरह याद किया

गंगाराम याहूदी ने जी देखो तो क्या काम किया।
अंग्रेजों से मिला रहा, और लड़ने का बस नाम किया।
फौज ने मांगा खाने को, ना उनका कोई काम किया।
भूखे लड़ते रहे गाजी अरु, किनको सुमू शाम किया।

खड़ी बोली के एक लोकगीत में गद्दार सामंतों का यह उल्लेख है :

सूबे के राजवार फिरंगी से मिल गये।
जितने लड़े समर में सब उत्तर चले गये।
दो एक निमक हराम किरिस्तान हो गये।
सदहा लड़ाई मारि कै राना निकल गये।

1857 के संग्राम में भाग लेने वाली अजीजन के अनेक गीतों में आजादी की पुकार बार-बार व्यक्त हुई है। उनका एक गीत यह है :

आजादी का बिगुल बजा है
और क्रांति का साज सजा है
देरी का है अब समय नहीं
सुनो नाना जी का फरमान॥
जागो, उठो, अब हुआ बिहान

एक गौंडी लोकगीत में आजादी की आकांक्षा इस रूप में व्यक्त हुई है:

हम भारत के गोंड-बैंगा, आजादी ख्यार।
अंग्रेजन ला मार भगाओ, भारत ले रे।
हम भैया छाती अड़ाओ,
हम तो खून बहाओ भारत ख्यार।
अंग्रेजन ला मार भगाओ, भारत ले रे।

हिंदी क्षेत्र की विभिन्न लोकभाषाओं के लोकगीतों के रचनाकार किसान ही थे इन लोकगीतों में अंग्रेजी राज की तस्वीर है। एक भोजपुरी लोकगीत में अंग्रेजी राज के कुराज के प्रभाव का वर्णन यह है :

हो गइली कंगाल हो विदेसी तोरे रजवा में।
सोने की थारी जहाँ जेवना जेंवत रहनी,
भारत के लोग आजु दाना बिनु तरसे भइया,
कठवा के डोकिया ले भइलीं मुहाल।
लन्दन के कुतवा उड़ावे मजा माल,
हो विदेसी तोरे रजवा में।

हिंदी क्षेत्र की लोकभाषाओं के लोकगीतों में 1857 के विद्रोह में भाग लेने और शहीद होने वाले अनेक पुरुषों और स्त्रियों के नाम ही नहीं उनकी संघर्ष गाथा भी मिलती है। भोजपुरी के लोकगीतों और गीतों में मंगल पांडे, कुँवर सिंह, उनके भाई अमर सिंह और पटना के पीर अली के नाम मिलते हैं। बुंदेली में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के बारे में अनेक लोकगीत हैं पर उनके साथ ही पारीछत की वीरता का प्रभावशाली वर्णन है।
वह लोकगीत इस प्रकार है :

मुरगा बोले पतारन में
हथनी मारे हजारन में।
पारीछत दहाड़े हजारन में।
ढड़कें फिरंगी पहारन में।
पाठे कौ झिन्ना रुकत नैया
पारीछत कौ हांती टरत नैया।
पूरी हथिनिया गरद मिला जाय

पारीछत कौ तेगा कतल कर जाए

एक और लोकगीत में लक्ष्मण सिंह की वीरता का वर्णन इस प्रकार है।

लक्ष्मन सिंह फिरत हैं दौआ
मारत जात लखत अंगरेजन, काटत ककरी जौआ
भगत फिरत अंगरेजा बेकल,दौआ हो राओ हौआ।
बांदा से कोठी तक मारी, फौज फिरंगी कौआ।
सुन लो सब कोउ कान खोल के भाग चले लखनौआ ।

एक अन्य गीत में श्यामलगिरी के शौर्य और युद्ध कौशल का वर्णन इस प्रकार

श्यामलगिरि भोरई आ धमके।
तीन सहस नाथु ले धाये, अंगरेजन पै चमके।
कानपूर से भगे फिरंगी पुन बिठूर आ धमके।
होन लगी तकरार रार है, आन फिरंगी ठमके।

एक लोककवि गंगा सिंह ने बहादुर सीला देवी और अन्य स्त्रियों के युद्ध का चित्रण किया है:
बांदा लुटो रात के गुइयां, सोउत रई चिरैयां सीला देवी लरी दौर के संग में सहस मिहरियां अंगरेजन तों करी लराई मारे लोग लुगड़यां गिरी गुसाईं तब दौरे हैं लरन लगे मऊ मइयां।
बुंदेली के एक और लोककवि रामधनी ने पद्माकर की रानी भवानी का यश-गान करते हुए लिखा है :

उमदानी है आज भवानी, पद्माकर की रानी
जागा जागा सभा रोय क सुना रई है बानी
सागर से वा नागपुर सों घड़ा रई रन पानी
मानों गुरिया बेंच-बांध के बनवा लेउ क्रियानी
भाला बरछी गोला बोला ले लो रे प्रिन ठानी
रामधनी अब रार ठनी है, देस दुखी तब जानी।

एक और बुंदेली लोकगीत में खानपुर के मर्दान सिंह के युद्ध-कौशल के बारे में यह कहा गया है:

लोहागढ़ कठिन मवात,
फिरंगी झांसी भरोसै ना रहियो।
जहं तोप चलें, गोला चलें, भालन की है मार,
जहँ सीस हथेली ले चले, जमराज के सिरदार ।
फिरंगी झांसी भरोसैं ना रहियो।
लोहागढ़...... का कहिये खानपुर बारे की,
मर्दन सिंह नृपत जुझारे की।

इन लोकभाषाओं के साथ-साथ मालवी, गौंडी, हिमाचली, हरियाणवी और कौरवी आदि लोकभाषाओं के लोकगीतों में 1857 के विद्रोह और बाद के दमन की स्मृतियाँ आज भी जीवित हैं। इन लोकगीतों के साथ ही बहादुरशाह की गज़लों में 1857 विद्रोह और बाद की बर्बादी के गम की गूँजें अनेक रूपों में मौजूद हैं तो बेगम हजरत महल की गज़ल में आजादी की तमन्ना और उसके लिए सब कुछ कुर्बान करने की तत्परता व्यक्त हुई है। उर्दू की दूसरी गज़लों में भी 1857 के विद्रोह के आग की गर्मी मौजूद है। अजीजन के गीतों में आजादी की चाहत और उसे पाने के लिए सब कुछ गँवाने की तैयारी के स्वर सुनाई देते हैं।)

राजस्थानी के लोकगीतों और गीतों में अपनी मातृभूमि पर अंग्रेजों के कब्जे से उपजे अपमान का बोध, आजादी के लिए मर-मिटने का जोश और महाविद्रोह के समय की शहादतों की स्मृतियाँ मौजूद हैं। राजस्थानी के

कविवर बाँकीदास ने 1830 के आसपास अंग्रेजी राज के आने के बारे में राजस्थान के राजाओं को चेतावनी दी थी और उनमें अपनी मातृभूमि की रक्षा का दायित्व बोध जगाया था। साथ ही उन्हें उनकी वीरता की परंपरा की याद दिलाते हुए ललकारा भी था। राजस्थानी के एक और बड़े कवि हैं सूरजमल्ल मिसण, जो 1857 के विद्रोह के समय मौजूद थे। वे उस समय कई स्तरों पर सक्रिय थे। एक ओर वे वीर सतसई की रचना कर रहे थे, जिसमें 1857 का संघर्ष प्रतिबिंबित है तो दूसरी ओर वे उसी समय अनेक राजपूत जमींदारों को पत्र लिखकर उस विद्रोह में शामिल होकर युद्ध करने की प्रेरणा दे रहे थे। उनके ऐसे पाँच पत्र प्राप्त हैं, जिन्हें वीर सतसई के संपादकों ने भूमिका में उद्धृत किया है। सूरजमल्ल मिसण की राजनीतिक सूझबूझ को समझने के लिए उनके पहले पत्र का यह अंश देखने लायक है, "ये राजा लोग देशपति जो जमीन के स्वामी हैं, ये सबके सब निकम्मे, कायर और हिमालय के गले ही निकले। इस क्रांति ने अंग्रेज को चालीस से लेकर 60-70 वर्ष तक पीछे डाल दिया है, तो भी ये राजा लोग कायरता दिखा रहे हैं और (अंग्रजों की) गुलामी करते हैं। परंतु मेरी यह बात आप याद रखिये कि जो इस बार अंग्रेज रह गया तो वही सर्वशक्तिमान हो जाएगा, पृथ्वी का मालिक कोई भी न रह सकेगा, सब ईसाई हो जाएँगे।" तीसरी ओर वे 1857 के विद्रोह के एक बहादुर आउवा के राजा खुशाल सिंह की तारीफ का गीत लिख रहे थे।

1857 से संबंधित राजस्थानी लोकगीतों में सबसे अधिक लोकगीत आउवा के राजा खुशाल सिंह के युद्ध कौशल, उनकी निर्भीकता और बलिदान के वर्णन-चित्रण से संबंधित हैं। एक लोकगीत यह है :

ढोल बाजे, थाळी बाजे, भेळो बाजे बाकियो,
अजंट ने ओ मारने दरवाजे नांकियो,
जुझै आउवो ! हे ओ जूंझै आउवो,
आउवो मुलकां में चावो ओ, जूंझे आउवो॥)

बुंदेली गीतों के स्वरों में अपनी एक अलग चमक थी जो ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध आँख में आँख डालकर अपनी राष्ट्र प्रेम की गाथा कह रहे थे ।

बांदा लुटो रात के गुइयां, सोउत रई चिरैयां
सीला देवी लरी दौर के संग में सहस मिहरियां
अंगरेजन तों करी लराई मारे लोग लुगइयां
गिरी गुसाईं तब दौरे हैं लरन लगे मऊ मइयां
सीला देवी को सिर काटो पलो लगत नई गुइयां
भगी सहेली सब गाउन में लैकें पाल मुन्ड्यां
गंगासिंग टेर कें कै रए भगो इतै ना रइयां ।

अंग्रेजी सेना के दमन का जो दावानल फैला उसकी लपटों की कुछ जलन लोकगीतों में भी व्यक्त हुई है। बुंदेली के लोककवि फकीरे खान के एक गीत में उसकी अभिव्यक्ति इस तरह हुई है

चूना मूंड़न पै बुझवा दये।
हांत-पांव में कीला ठोंके, पाछे से संदवा दये।
तेरा दिन चार मइना लों, गोड़न खून मिटा दये।
जार दयो है बिला बिलजुरा लुटो जन भगवा दये।
अंगरेजन खां बुलाइनन ने, बंटाधार करा दये।
खान फकीरे, कॉलों कइये, ऐसे हाल करा दये।

दूसरे लोककवि दादूराम के गीत में अंग्रेजी सेना की करतूतों का वर्णन यह हैगए खानपुर वारे हैं।

चौतरफा से घेरा पर गए गंसे गांव के द्वारे हैं।
उरझा सेन फिरंगी लूटें, जारे पुर घर सारे हैं।
गाए मार डार दई दौरन, छैंके जन अति वारे हैं।
'दादूराम' टेर कें कै रये छांड चलो घर द्वारे हैं।

अंग्रेजों ने दमन के माध्यम से आतंक का जो राज कायम किया उसका चित्रण एक कौरवी लोकगीत में यह है :

मेरी थर थर माथा कांपे री गोरों के डर के मारे
बागों के माली भागे री गोरों के डर के मारे
तालों के धोबी भागे री गोरों के डर के मारे।

अंग्रेजी सेना ने सुराज का नाम लेना भी अपराध घोषित कर दिया था। यह बात एक लोकगीत में इस तरह है:

बुंदेलखंड के गांउन-गांउन, फेर ढ़ोड़ेर पिटवाओ।
जो सुराज की नाम लेवेगें, तो हम कीला ठुकवाओ।
गांवन-गांवन पी.ए. फिशर नें करो दमन भौंतई भारी।
अंग्रेजन के गुलाम राजा, तिनके हम गुलाम भारी॥

1857 के भारतीय विद्रोह के बिखरने के बाद अंग्रेजी राज के सैनिकों और सेनापतियों ने दमन, लूट, हत्या और भयानक आगजनी का जो खूंखार अभियान चलाया था उसको ब्रिटिश सत्ता, जनता और बुद्धिजीवियों की नजर में जायज ठहराने के लिए अंग्रेजों ने औरतों, बच्चों और जवानों के साथ भारतीय विद्रोही सैनिकों के अत्याचारों की कल्पित कहानियों का खूब प्रचार-प्रसार किया। उस प्रचार का असर ब्रिटिश संसद, वहाँ के अखबार और बुद्धिजीवियों पर पड़ा। लंदन के अखबार 'दी टाइम्स' ने घोषणा की, "एक चर्च के विनाश के बदले हम 50 मंदिर नष्ट करेंगे। प्रत्येक ईसाई की हत्या के बदले हम 1000 विद्रोहियों की हत्या करेंगे।")

सन् 1857 के संग्राम में संघर्ष करने वाले तथा शहीद होने वाले भारतीय जन और उनके संघर्ष तथा शहादत के गीत गाने वाले लोक कवि यह उम्मीद करते थे कि भविष्य के कृतज्ञ भारतवासी उनके संघर्ष और बलिदान को जरूर याद करेंगे। यही उम्मीद ब्रजभाषा के इस लोकगीत में व्यक्त हुई है :

भूल न जइयो भारतवासी उन वीरन की कुर्बानी।
हँसते-हँसते प्रान गंवाएँ अमर रखो माँ कौ पानी॥

इस पुस्तक की भूमिका के आरंभ में समाज से साहित्य के जिस संबंध की बात कही गई है उसकी पुष्टि सुभद्राकुमारी चौहान की कविता झांसी की रानी की समाधि पर की इन पंक्तियों से होती है :

इससे भी सुन्दर समाधियाँ हम जग में हैं पाते ।
उनकी गाथा पर निशीथ में क्षुद्र जन्तु ही गाते॥
पर कवियों की अमर गिरा में इसकी अमिट कहानी ।
स्नेह और श्रद्धा से गाती है वीरों की वानी।

छत्तीसगढ़ी के एक लोकगीत में 1857 के संघर्ष को 'आजादी का पहला राग' कहा गया है :

धधके लगिस वीर बंगाल
दिल्ली के रंग होंगे लाल
माचिस रकत होले फाग
आजादी के पहिली राग।
कापिस अंग्रेजी शासन
डोलिस लंदन के आसन

जो समाज अपने अतीत के इतिहास को भूलता है वह भविष्य में भयंकर भूलें करता है।

निष्कर्ष

स्वाधीनता आंदोलन में क्रांतिकारियों का विद्रोह का तय स्वर अब लोकगीतों के लय बदल चुका था । विविध भाषा व बोलियों के माध्यम से सामाजिक- सांस्कृतिक एकजुटता हुई । आंदोलन में एकरूपता क्रांति का एक ही स्वर आगे बढ़कर ब्रिटिश सत्ता को करारा जवाब दिया यह जवाब था स्वराज का । क्रांतिकारी व साहित्यकारों की कलम ने स्वतंत्रता की वह धारा प्रवाहित की जो आंदोलन के अगुआ नेतृत्वकर्ता न कर सके । इन लोकगीतों ने जन समुदाय की आवाज, चेतना व अनुभूति का बोध कराया उनके लोकगीतों ने आगामी आंदोलन व क्रांतिकारियों को नई दिशा व दशा प्रदान की।

संदर्भ ग्रंथ

- **वीर सतसई, सूर्यमल्ल मिश्रण, सं. कन्हैयालाल सहल और अन्य, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर**
- **1857: एक महागाथा, प्रस्तोता गोपाल प्रधान, 2011 स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013,**
- **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रंथावली, पहला खण्ड, सं. ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008,**

◀◀ ▶▶

भूमण्डलीयकरण के दौर में अपने जड़ों से जुड़ाव : 'मेरे देश की मिट्टी, अहा' के विशेष संदर्भ में

अंकिता पटेल*

भूमंडलीकरण का तात्पर्य है कि 'वैश्विक स्तर पर एकीकरण करना'।

भूमंडलीकरण एक वैश्विक प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य से विश्व के विभिन्न देशों और अर्थव्यवस्थाओं को एक साथ जोड़ना और वैश्विक स्तर पर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देना है। भूमंडलीकरण का दूसरा नाम 'वैश्वीकरण' भी है भूमंडलीकरण के अंतर्गत कुछ और नीतियों का जन्म हुआ है जैसे निजीकरण और उदारीकरण यह दोनों नीतियां भूमंडलीकरण के ही देन है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया लगभग हमें सभी क्षेत्रों में दिखाई पड़ती है और अपना प्रभाव भी छोड़ती है। इसका प्रभाव 1990 के बाद से विश्व में देखने को मिलता है। भूमंडलीकरण का प्रभाव आम आदमी से लेकर बड़े आदमी अर्थात बिजनेसमैन तक देखी जाती है, सबसे अधिक प्रभावित इससे किसान वर्ग और मजदूर वर्ग में जो अपने जमीन से बेघर हो रहे हैं तथा मजदूरी करने के लिए विवश हो रहे हैं। कुछ किसान अपने जमीन को का शहर की तरफ पलायन करके मजदूर बनने को विवश है।

भारत की दृष्टि से देखे तो भारत विकासशील राष्ट्र है। भारत को इस भूमंडलीकरण का लाभ भी मिल रहा है और साथ में हानि भी मिल रहा है। भूमंडलीकरण के द्वारा पूरे विश्व में बाजार का समन्वयन करना और एकीकरण को बढ़ावा देना है भूमंडलीकरण का वास्तविक साहित्यिक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भूमंडलीकरण केवल एक आर्थिक शब्द नहीं, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक तरीके से बदलाव भी लाया है। हम कहानी के माध्यम से यह समझ सकते हैं कि कैसे किसान अपने जगह जमीन को छोड़कर शहर की तरफ पलायन कर रहे हैं।

'मेरे देश के मिट्टी, अहा' मृदुला गर्ग द्वारा लिखी गई, भूमंडलीकरण के बाद की कहानी है जिसमें दिखाई देता है कि हम सच में अपने गांव के जड़ों से जुड़े हुए हैं या बस बातें ही रह गए हैं। इस कहानी केमुख्य पात्र लल्ली है, जिसके माध्यम से लेखिका संकेत करती हैं कि शहर में रहने के बावजूद वह अपने घर गांव जमीन से जुड़ी हुई है यह शहर ऊँची- ऊँची इमारतें उसको बाहरी आवरण तो दिया लेकिन उसका अंतर्मन अभी भी अपने मूल गांव से जुड़ा हुआ है। इस कहानी की शुरुआत ही गांव की वातावरण परिवेश से होता है "हवा ठंडी नहीं थी। न साफ। धूल, मिट्टी से भरी। हुई थी फिर भी खाट पर लेटी लल्ली को भली लग रही थी। इसलिए कि उसमें धुआ नहीं था। उसके लम्बा कश भरकर हवा भीतर खींची। बे धुंआ हवा में सांस लेना कितना बड़ा सुख है, उसने गांव खेडी में आकर जाना। दोनों छोड़ती है मीठी से अलग होकर खुले आकाश के नीचे बैठने की औकात, यहां आने पर जो हुई।"

मृदुला गर्ग की कहानी 'मेरे देश की मिट्टी, अहा' उन महत्वपूर्ण कहानियों में से एक जो भूमंडलीकरण, पलायन और अपने गांव से लगाव को दिखाता है। यह उसे दौर कि ऊपज़ है, जहाँ दूरियां कम हो रही हैं लेकिन व्यक्ति अपने जडों से दूर हो रहा है।

---

* शोधार्थी हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय
6387481770, ankitasingh6619@gmail.com

'मेरे देश की मिट्टी, अहा' में 'अहा 'शब्द लेखिका का तीखा व्यंग है। 'अहा'शब्द का भाव गहरी उल्लास या कोई चीज प्राप्त होने के पश्चात मनुष्य के हृदय में होता है। इस कहानी में 'अहा' शब्द उल्लास का प्रतीक नहीं बल्कि एक दिखावा और सम्मोहन का शब्द है। अपने देश की मिट्टी से लगाओ तो है लेकिन कहानी को देखा जाए तो वह उसे खोखलेपन को उजागर करता है जो आज के मनुष्य में व्याप्त है, वह मिट्टी का गुणगान तो करता है लेकिन मिट्टी के वास्तविक पहचान से दूर है। उस मिट्टी के संघर्ष, खून पसीने से दूर है उसके वास्तविक अर्थ को नहीं समझता। मृदुला गर्ग ने कहानी के माध्यम से बताया कि मिट्टी केवल उनके लिए शौकिया वस्तु बन के रह गई है जिसे उनके यथार्थ जीवन के संघर्ष कोई मतलब नहीं है। उसके लिए मिट्टी शब्द खुशबू मात्र है जिसे वह विदेश में बैठकर सुगंध लेना चाहते हैं,

भावात्मक तरीके से उसे जोड़ना चाहता है। लेकिन शारीरिक और मानसिक तौर पर दूर रहना। क्योंकि मिट्टी लगने पर उसे गंदगी महसूस होती है। वह उसे परिश्रम को नहीं करना चाहता जिससे वह थक जाए, जिसको दूर बैठकर बस देखना पसंद है। मिट्टी को वह छोड़ नहीं जाता है बस मिट्टी की खूबसूरती को देखना चाहता है लेकिन वह यह नहीं चाहता कि उसके बदन पर मिट्टी एक भी कण पड़े। मिट्टी से सने हाथ नहीं। "चिकनी मिट्टी के वह मनभावन खिलौने बनाती, वह लुभावना रंग उन पर फेरती की शहर के हाट में पहले खेप में बेच लो।"

लेखिका इस कहानी में उसे खोखलेपन और दोहरी मानसिकता को दिखाने का प्रयास करते हैं जिसमें लोग गांव में कदम रखते हैं कीचड़ सनी बदबू और चमदड़ी टोला देखकर नाक- मुँह सिकोड़ने लगते हैं, लेकिन शहर में जाते हैं 'मेरे देश की मिट्टी' का राग अलापने लगते हैं तो इस दोहरी मानसिकता का शिकार लोगों पर करारा चोट किया गया है। लेखिका ने इस पर भी विशेष जोर दिया है कि क्या यह जड़े केवल यादों में होती है या आचरण में?

शहर और गांव दोनों का आपस में तुलना भी किया है शहर की गंदगी प्रदूषित हवा के साथ-साथ उसने दलित बस्तियों का भी कहानियों में जिक्र किया है क्योंकि चमारों की बस्ती के बगल में उसकी दादी और लेके झोपड़ी थी। जाति से बनियान थे।

कहानी की शुरुआत, 'खेड़ा' नामक गांव से होता है, जहां 6-7 साल की उम्र तक लल्ली गांव में रहती है। उसकी दादी की मृत्यु होने के पश्चात उसका, उस घर में कोई नहीं बचता। रिश्तेदार लोग लल्ली को शहर लेकर चले जाते हैं। जब 20 साल की होती है तो उसकी शादी उसी के जीजा जिनकी पत्नी की मृत्यु और दो बच्चों के देखभाल के लिए करना चाहते हैं, लेकिन जिस आदमी से उसकी शादी करना है वह पुलिस में है। अपनेमारपीट के किस्से लल्ली को हमेशा सुनता रहता है जिससे लल्ली के मन में डर बैठ जाता है वह भाग कर एक डेढ़ पसली नवजवान मुसलमान से निकाह कर लेती है। उसे खुशी इस बात की है कि रिश्तेदारों ने तो इसकी इच्छा कभी नहीं पूछी कम से कम यहां पहली बार उसकी इच्छा तो पूछे जा रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बीत गए लेकिन उन्हें आज भी कहीं अपने पैसे लेने का हक नहीं दिया गया है। निम्नलिखित पंक्ति से देखने को मिलता है- " डेड पसली का नौजवान मुसलमान था, यह उसे तब पता चला जब दिल्ली शहर पहुंचकर निकाह पड़वाने वह उसे मौलवी के पास ले गया। और उन्होंने कलमा पढ़वा कर उसे लाली से लैला बनने को कहा तब जिंदगी में पहली बार उसकी राय पूछी गई मौलवी साहब ने पूछा निकाह से तुम्हें इकरार है कि नहीं तो नई नई लल्ली बनी लैला डबल खुशी के मारे लाहोलूहाट हो गई।"

मुसलमान युवक से निकाह करने के कुछ वर्ष बाद, वह वापस खेड़ा गांव आ जाती है। और वहीं रहने लगती है लेखिका कहानी के माध्यम से दिखाते हैं कि शहर जवानी का प्रतीक है और बुढ़ापा गांव का। बुढ़ापे में अपना घर अपने गांव में ही सुकून है एक उम्र के बाद चकाचौंध और आकर्षक से भरी वस्तुयें सब निरर्थक जान पड़ती हैं। अपना मूल जड़ अर्थात घर ही रहने लायक होता है स्वस्थ हवा, विकार रहित वातावरण इस

भूमंडलीकरण के दौर में अधिक से अधिक लोग गांव को छोड़कर शहर को भूमडल जीवन यापन करने के लिए चल देते हैं लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो अपने गांव शहर में रहकर ही कोई कार्य करके अपना जीवन यापन करते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि वह जाना नहीं चाहते इसलिए नहीं जाते कि वह अपने मिट्टी को छोड़ नहीं सकते।

महिला कथाकार मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में संवेदना व शिल्प का विषद विवेचन किया है। मृदुला गर्ग अपनी बातों को चाहे वह कहानी के माध्यम से हो या उपन्यास के माध्यम से हो स्पष्ट और बेबाकी तरिके से कहना पसंद करती हैं चाहे वह नारी की स्वतंत्रता पर हो,

समाजीकरण के लिए हो, हर क्षेत्र में इन्होंने अपनी साहित्यिक रचनाएं लिखकर उनमें योगदान दिया है। उनकी रचनायों में शिल्प और कथा का गहरा संबंध है। भाषा शैली की दृष्टि से कथा साहित्य का शब्द भंडार पर्याप्त है। भाषिक संरचना में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का प्रयोग लेखिका ने अपने पूरे कथा साहित्य में किया है।

मृदुला गर्ग की भाषा-शैली की सबसे बड़ी विशेषता है-सरलता में गहराई। 'मेरे देश की मिट्टी, अहा' में भाषा बोझिल नहीं है, बल्कि वह आम आदमी की संवेदनाओं के करीब है। यहाँ 'मिट्टीं' मात्र एक वस्तु नहीं, बल्कि जड़ों, पहचान और अस्तित्व का प्रतीक है। भूमंडलीकरण के शोर में जहाँ अंग्रेजीयत और उपभोक्तावाद हावी है, वहाँ लेखिका ने देशज शब्दों और प्रतीकों के माध्यम से यह बताया है कि इंसान चाहे सात समंदर पार चला जाए, उसकी रूह अपनी मिट्टी की खुशबू में ही बसती है।

'मेरे देश की मिट्टी, अहा' की शैली विवरणात्मक होने के साथ-साथ चिंतनशील भी है। लेखिका पाठक से सीधे संवाद करती प्रतीत होती हैं। वे सवाल खड़ा करती हैं कि क्या भौतिक प्रगति हमारी जड़ों की कीमत पर होनी चाहिए? उनकी शैली में एक व्यंग्य भी छिपा है-उन लोगों पर जो अपनी जड़ें भूलकर नकली पहचान ओढ़ लेते हैं। मृदुला गर्ग की कहानी 'मेरे देश की मिट्टी अहा' भूमंडलीकरण के दौर में विस्थापन, पहचान के संकट और अपनी जड़ों की ओर लौटने की छटपटाहट का एक अत्यंत मार्मिक दस्तावेज़ है। इस कहानी का निष्कर्ष न केवल एक पात्र की घर वापसी है, बल्कि यह आधुनिक सभ्यता के उस खोखलेपन पर करारा प्रहार है, जो मनुष्य को सुविधाओं के बदले उसकी संवेदनाओं से दूर कर देता है।

निष्कर्ष :-

कहानी का निष्कर्ष इस सत्य को उजागर करता है कि भूमंडलीकरण ने मनुष्य को दुनिया भर की सुख-सुविधाएं और 'ग्लोबल' होने का भ्रम तो दिया, लेकिन उसके भीतर एक स्थायी अकेलापन भर दिया है। मुख्य पात्र जब विदेशी चकाचौंध को छोड़कर अपनी मिट्टी की ओर मुड़ता है, तो यह स्पष्ट होता है कि विदेशी डॉलर और मशीनी जीवन उस 'सौंधी खुशबू का विकल्प नहीं हो सकते जो अपनी जमीन से जुड़ाव महसूस कराती है। लेखिका यह संदेश देती हैं कि 'मिट्टी' केवल एक वस्तु या भूगोल का हिस्सा नहीं है, बल्कि यह एक स्मृति है, एक संस्कार है। भूमंडलीकरण के दबाव में जब इंसान अपनी भाषा, संस्कृति और परिवेश को भूलने लगता है, तब उसे अपनी जड़ों की याद एक 'एंटीडोट' की तरह आती है। कहानी का अंत इस बात की पुष्टि करता है कि मनुष्य का अस्तित्व तभी तक सुरक्षित है जब तक वह अपनी जड़ों से पोषण प्राप्त कर रहा है।

मृदुला गर्ग ने निष्कर्ष के माध्यम से यह दिखाया है कि बाजारवाद ने हर चीज को 'बिकाऊ' बना दिया है, यहाँ तक कि भावनाओं को भी। लेकिन 'मेरे देश की मिट्टी के प्रति जो अनुराग है, वह बाजार की पहुँच से बाहर है। नायक का अपनी जड़ों की ओर झुकाव यह दर्शाता है कि उपभोक्तावादी संस्कृति हमारी आत्मा को तृप्त नहीं कर सकती। अपनी पहचान को बचाए रखने के लिए अपनी मिट्टी से जुड़ना एक अनिवार्य शर्त है। कहानी का समापन एक गहरे 'बोध' के साथ होता है। यह बोध है-अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान का। अक्सर हम आधुनिक दिखने की होड़ में अपनी परंपराओं को पिछड़ा मान लेते हैं, लेकिन संकट के समय वही परंपराएं

और वही 'मिट्टी' हमें सहारा देती हैं। निष्कर्ष यह रेखांकित करता है कि प्रगति का अर्थ अपनी जड़ों को काटना नहीं, बल्कि उन्हें साथ लेकर फलना-फूलना है।

मृदुला गर्ग की यह कहानी भूमंडलीकरण के दौर में भटकते हुए मनुष्य को एक दिशा दिखाती है। यह बताती है कि विकास की ऊँचाइयों को छूना बुरा नहीं है, लेकिन उन ऊँचाइयों पर टिके रहने के लिए पैर अपनी जमीन पर होने चाहिए। 'मेरे देश की मिट्टी अहा' का निष्कर्ष एक ऐसी वैचारिक क्रांति है जो हमें अपनी जड़ों की महत्ता को फिर से पहचानने के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

मेरे देश की मिट्टी, अहा- मृदुला गर्ग
भूमण्डलीकारण, बाज़ार और समकालीन कहानी - अरुण होता

किशोरियों में आहार विविधता और एनीमिया के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. प्रियादर्शनी कुमारी*

सार–

यह अध्ययन गया जिले की 200 किशोरियों (100 शहरी और 100 ग्रामीण) में आहार विविधता और एनीमिया के स्तर का तुलनात्मक विश्लेषण करता है। किशोरियों में एनीमिया एक व्यापक स्वास्थ्य समस्या है, जो उनकी विकास और शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करती है। अध्ययन में पाया गया कि ग्रामीण किशोरियों में आहार विविधता कम और एनीमिया की गंभीरता अधिक है, जबकि शहरी किशोरियाँ अपेक्षाकृत बेहतर पोषण स्थिति में हैं। आहार विविधता स्कोर और हीमोग्लोबिन स्तर के बीच सकारात्मक सहसंबंध ($r = 0.68$, $p < 0.001$) दर्शाया गया, जो यह प्रमाणित करता है कि विविध और संतुलित आहार एनीमिया को कम करने में सहायक होता है। मातृ शिक्षा, पारिवारिक आय, और आयरन–फोलिक एसिड टैबलेट सेवन जैसे सामाजिक–आर्थिक कारक भी किशोरियों के पोषण और स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। इस शोध के आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण शिक्षा, आहार विविधता को बढ़ावा देना, और स्वास्थ्य हस्तक्षेपों को सुदृढ़ करने की सिफारिश की गई है।

मूल शब्द – किशोरियाँ, आहार विविधता, एनीमिया, हीमोग्लोबिन स्तर, पोषण स्थिति, मातृ शिक्षा एवं पोषण जागरूकता आदि।

किशोरावस्था (10–19 वर्ष) एक संक्रमणकालीन अवस्था है, जहाँ शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास तीव्र गति से होता है। इस समय शरीर की पोषण संबंधी आवश्यकताएँ अत्यधिक होती हैं, विशेषकर लड़कियों के लिए, क्योंकि इसी अवस्था में मासिक धर्म शुरू होता है, जिससे लौह (प्तवद) की आवश्यकता बढ़ जाती है। यदि इस अवधि में आहार विविधता संतुलित न हो, तो किशोरियों में एनीमिया (।दमउपं) विकसित हो सकता है, जो उनके शारीरिक विकास, शैक्षणिक प्रदर्शन, प्रजनन स्वास्थ्य और भविष्य की पीढ़ियों के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5) के अनुसार, भारत में 15–19 वर्ष की 59.1% किशोरियाँ एनीमिया से ग्रस्त हैं। यह आँकड़ा दर्शाता है कि किशोरियों के पोषण स्तर में गंभीर गिरावट है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या और भी अधिक विकराल है, जहाँ पोषण जागरूकता, भोजन की उपलब्धता और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच सीमित होती है।

आहार विविधता– आहार विविधता से तात्पर्य है– विभिन्न प्रकार के खाद्य समूहों का सेवन। यह एक संकेतक है जो पोषण गुणवत्ता को दर्शाता है। WHO और FAO जैसे संगठनों ने इसे पोषण मूल्यांकन का एक महत्वपूर्ण पैमाना माना है। विविधता जितनी अधिक, पोषण उतना बेहतर। ज्ञात हो कि किशोरी अवस्था मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील चरण है, जिसमें शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है। इस अवस्था में पोषण की उचित मात्रा और गुणवत्ता अत्यंत आवश्यक होती है क्योंकि यह न केवल किशोरी के स्वास्थ्य और विकास को प्रभावित करती है, बल्कि उसके भावी गर्भधारण एवं संतान के स्वास्थ्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत सहित विकासशील देशों में किशोरियों में एनीमिया एक व्यापक और गंभीर स्वास्थ्य समस्या बनी हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, किशोरियों में एनीमिया का प्रचलन बहुत अधिक है, जो मुख्यतः पोषण की कमी, विशेषकर आयरन की कमी के कारण होता है। एनीमिया न केवल थकान, कमजोरी, और ध्यान की कमी जैसी शारीरिक समस्याओं को जन्म देता है, बल्कि यह किशोरियों की शैक्षिक उपलब्धि और सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है।

गया जिला, बिहार के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में किशोरियों की पोषण स्थिति में उल्लेखनीय भिन्नता देखी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में किशोरियों की पोषण स्थिति शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक कमजोर पाई जाती है, जिसका प्रमुख कारण सीमित पोषण संबंधी जागरूकता, आर्थिक तंगी, और खाद्य विविधता की कमी है। आहार विविधता का अर्थ है कि व्यक्ति का आहार विभिन्न प्रकार के खाद्य समूहों से समृद्ध हो,

* पी–एच0डी0, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

जिससे आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति सुनिश्चित हो सके। आहार विविधता किशोरियों में आयरन सहित अन्य महत्वपूर्ण पोषक तत्वों की कमी को कम करने में सहायक सिद्ध होती है, जिससे एनीमिया की संभावना कम होती है।

हालांकि, भारत में कई राज्य किशोरियों के पोषण और एनीमिया की समस्या पर शोध कर चुके हैं, लेकिन गया जिले के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में इस विषय पर तुलनात्मक अध्ययन की कमी है। इस क्षेत्रीय अध्ययन के माध्यम से यह समझना आवश्यक है कि शहरी और ग्रामीण किशोरियों के आहार विविधता और एनीमिया के स्तर में क्या अंतर है, और किन सामाजिक–आर्थिक तथा व्यवहारिक कारकों का इस पर प्रभाव पड़ता है। इससे स्थानीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों और नीतियों को बेहतर बनाने में मदद मिलेगी।

बिहार राज्य का गया जिला सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़ा क्षेत्र माना जाता है, जहाँ बालिकाओं की पोषण स्थिति चिंताजनक है। शहरी क्षेत्रों में संसाधन थोड़े बेहतर हो सकते हैं, परंतु वहाँ भी जंक फूड, व्यस्त जीवनशैली और पोषण जागरूकता की कमी एक बड़ी चुनौती है।

अतः यह शोध किशोरियों में पोषण की स्थिति और एनीमिया के स्तर को समझने के साथ–साथ आहार विविधता के महत्व को उजागर करेगा, जो अंततः किशोरियों के समग्र स्वास्थ्य सुधार में सहायक होगा। यह पहल गया जिले के शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में किशोरियों के स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रमों को बेहतर बनाने के लिए एक ठोस आधार तैयार करेगी।

बिहार भारत के उन राज्यों में से एक है जहाँ किशोरों, विशेषकर किशोरियों में पोषण संबंधी समस्याएँ और एनीमिया की उच्च दर पाई जाती है। विभिन्न राष्ट्रीय और क्षेत्रीय अध्ययनों ने बिहार में किशोरियों में एनीमिया और पोषण की स्थिति पर गहन अध्ययन किया है, जिनसे इस क्षेत्र की वास्तविक स्थिति की बेहतर समझ प्राप्त हुई है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, दुनिया भर में किशोर लड़कियों में एनीमिया की प्रमुख वजहों में शामिल हैं कृ लौह की कमी, खराब आहार विविधता, बार–बार होने वाले संक्रमण, और मासिक धर्म से संबंधित रक्त हानि।

NFHS-5 (2019–21) रिपोर्ट अनुसार भारत में किशोरियों (15–19 वर्ष) में एनीमिया की दर 59.10% है। वहीं बिहार में यह दर 65.00% से अधिक पाई गई, जो देश के औसत से भी अधिक है। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में एनीमिया का स्तर शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक था।[1]

विश्व स्वास्थ्य संगठन–एक वैश्विक समीक्षा (2021) में बताया गया कि 15–19 वर्ष की आयु की लड़कियों में एनीमिया की व्यापकता लगभग 30.00% से अधिक है, जो विकासशील देशों में 50.00% तक पहुँच सकती है। FAO और UNICEF ने यह भी पाया है कि यदि किशोरियों को विभिन्न प्रकार के खाद्य समूह जैसे कृ साबुत अनाज, दालें, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, विटामिन–C युक्त फल, और पशु–आधारित उत्पाद नियमित रूप से दिए जाएँ, तो एनीमिया की दरों में 25–40% तक की गिरावट संभव है।[2]

एफएओ (2019) में पाया गया कि 82.00% किशोरियाँ एनीमिक पाई गईं। जिसमें किशोरियाँ अत्यधिक जंक फूड का अधिक सेवन और हरी सब्जियों की कमी आम समस्या थी। जो किशोरियाँ चाय या कॉफी भोजन के साथ लेती थीं, उनमें आयरन का अवशोषण और कम पाया गया।[3]

कुमार, एस., और सिंह, पी. (2018) में आहार विविधता सूचकांक का सीधा संबंध हीमोग्लोबिन स्तर से पाया गया। अध्ययन में पाया गया कि 5 से कम खाद्य समूहों का सेवन करने वाली किशोरियों में एनीमिया की संभावना 2 गुना अधिक थी।[4]

बिहार राज्य स्वास्थ्य सोसायटी वार्षिक स्वास्थ्य रिपोर्ट (2020–21) अध्ययन में देखा गया कि जिन किशोरियों ने हफ्ते में कम से कम 4 बार मांस, मछली, हरी सब्जियाँ और फल खाए, उनमें एनीमिया की दर मात्र 22.00% थी, जबकि अन्य में यह 46.00% थी।[5]

शर्मा, आर. और वर्मा, ए. (2022) के एक अध्ययन में देखा गया कि पोषण शिक्षा और आयरन–युक्त भोजन की आदतें किशोरियों के हीमोग्लोबिन स्तर में सुधार लाने में सहायक पाई गईं। स्कूलों में पोषण जागरूकता कार्यक्रमों के बाद आहार विविधता स्कोर में औसतन 1.8 अंकों की वृद्धि देखी गई।[6]

पटना विश्वविद्यालय का अध्ययन (2018) पटना विश्वविद्यालय द्वारा किए गए एक क्षेत्रीय अध्ययन में पाया गया कि बिहार के ग्रामीण जिलों में किशोरियों की आहार विविधता अत्यंत कम है। अध्ययन में किशोरियों के आहार में हरी पत्तेदार सब्जियों, फल, और प्रोटीन स्रोतों का सेवन न्यूनतम था। इसके कारण,

इन क्षेत्रों में मध्यम से गंभीर एनीमिया की समस्या आम थी। अध्ययन में यह सुझाव दिया गया कि पोषण शिक्षा और खाद्य विविधता बढ़ाने के लिए विद्यालय आधारित कार्यक्रम अत्यंत आवश्यक हैं।[7]

बिहार राज्य स्वास्थ्य मिशन की रिपोर्ट (2021) बिहार राज्य स्वास्थ्य मिशन की रिपोर्ट में किशोरियों में आयरन–फोलिक एसिड (IFA) टैबलेट के वितरण और सेवन की कमी को प्रमुख चुनौती बताया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में IFA सप्लीमेंटेशन की उपलब्धता और जागरूकता कम होने के कारण किशोरियों में एनीमिया के स्तर अधिक हैं। इस रिपोर्ट में बेहतर निगरानी, स्वास्थ्य शिक्षा, और स्थानीय स्तर पर पोषण संबंधी हस्तक्षेप की आवश्यकता पर बल दिया गया है।[8]

स्वास्थ्य केंद्रों का सर्वेक्षण (2021) गया जिले के ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों द्वारा किए गए सर्वेक्षण में पता चला कि किशोरियों की पोषण स्थिति पर सामाजिक–आर्थिक कारक जैसे माता–पिता की शिक्षा, परिवार की आर्थिक स्थिति, और सांस्कृतिक मान्यताएँ महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। विशेष रूप से, मातृ शिक्षा की कमी के कारण पोषण संबंधी जागरूकता कम थी, जिससे किशोरियों में एनीमिया और कुपोषण की दर अधिक थी। ”किशोरी अवस्था में आहार विविधता और एनीमिया” बिहार के एक शोधपत्र में पाया गया कि किशोरियों में आहार विविधता और हीमोग्लोबिन स्तर के बीच सकारात्मक सहसंबंध है। यह अध्ययन विशेष रूप से गया और नालंदा जिलों के किशोरियों पर केंद्रित था, जहाँ शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण की कमी और एनीमिया की दर अधिक थी। शोधकर्ता ने सुझाव दिया कि पोषण शिक्षा के साथ–साथ स्थानीय स्तर पर पौष्टिक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता बढ़ाना आवश्यक है।[9]

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5, 2019–21) राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार बिहार में किशोरियों में एनीमिया की दर लगभग 60.00% से अधिक है, जो राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक है। यह एनीमिया मुख्यतः आयरन की कमी के कारण होता है और इसके पीछे आहार की कमी, गरीबी, और शिक्षा की कमी मुख्य कारण माने गए हैं। इसके अलावा, NFHै–5 में यह भी बताया गया कि बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में किशोरियों की पोषण स्थिति शहरी क्षेत्रों की तुलना में काफी खराब है, जिसमें आहार विविधता की कमी भी प्रमुख कारण है।[10]

बिहार क्षेत्र के अधिकांश अध्ययन यह संकेत करते हैं कि किशोरियों में एनीमिया की समस्या मुख्यतः पोषण की कमी, विशेष रूप से आहार विविधता की कमी, आर्थिक असमानता, और सामाजिक–शैक्षिक कारकों के कारण उत्पन्न होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या अधिक गम्भीर है क्योंकि वहाँ पोषण शिक्षा, आयरन सप्लीमेंटेशन, और स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच सीमित है। अतः बिहार में किशोरियों के पोषण सुधार हेतु व्यापक और स्थानीय स्तर पर प्रभावी कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

समस्या कथन– गया जिले की किशोरियाँ चाहे शहरी हों या ग्रामीण कृ दोनों समूहों में एनीमिया एक सामान्य स्थिति है। परंतु क्या दोनों क्षेत्रों में आहार विविधता में कोई अंतर है? और क्या यह अंतर एनीमिया के स्तर को प्रभावित करता है?

अनुसंधान पद्धति– यह अध्ययन एक तुलनात्मक, मात्रात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकार का है, जिसका उद्देश्य गया जिले की शहरी और ग्रामीण किशोरियों में आहार विविधता और एनीमिया के स्तर की तुलना करना है। इस अध्ययन का उद्देश्य गया जिले की 200 किशोरियों (शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों से 100–100) सुविधा जनित नमूना विधि (Purposive Sampling) का प्रयोग किया गया और समूहों के बीच आहार विविधता और एनीमिया के स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष स्थानीय स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रमों के लिए महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रदान करेंगे और किशोरियों में एनीमिया के रोकथाम एवं पोषण सुधार के लिए प्रभावी रणनीतियों का विकास संभव होगा। गया जिले के नगर निगम क्षेत्र के अंतर्गत आयु सीमाः 13 से 19 वर्ष की किशोरियाँ एक सरकारी कन्या उच्च विद्यालय और एक पंचायत स्तर के उच्च माध्यमिक विद्यालय से चयन किया गया है।

डेटा संग्रहण उपकरण–

अ). प्रश्नावली– द्वारा व्यक्तिगत जानकारी (आयु, कक्षा, परिवार की आय, माता की शिक्षा), आहार आदतें (दिनचर्या, भोजन की संख्या, खाद्य समूहों का सेवन), मासिक धर्म संबंधी विवरण एवं ᳨। टैबलेट सेवन एवं पोषण शिक्षा से संबंधित प्रश्न पूछे गए थे।

ब). आहार विविधता स्कोर– WHO के दिशानिर्देशों के अनुसार 9 प्रमुख खाद्य समूहों के आधार पर स्कोरिंग की गई, जिसमें– अनाज, दालें और बीजें, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अन्य सब्जियाँ, फल, मांसध्मछलीध्अंडा, दूध

और दुग्ध उत्पाद, वसाध्तेल, मिठाईध्जंक फूड आदत प्रणाली को देखना रहा। वहीं क्वै स्कोरिंगरू 0–3 = कम विविधता, 4–6 = मध्यम विविधता, 7–9 = उच्च विविधता पर आधारित है।

स). हीमोग्लोबिन मापन– हीमोग्लोबिन मापन पर फिंगर प्रिक द्वारा Hemocue device की सहायता से किया गया।

WHO मानकों के अनुसार– 12.0 g/dl और उससे ऊपर = सामान्य, 11–11.9 g/dl = हल्का एनीमिया, 8–10. 9 g/dl = मध्यम एनीमिया, और <8-0 g/dl = गंभीर एनीमिया का मापन किया गया।

परिकल्पना– गया जिले की शहरी और ग्रामीण किशोरियों में आहार विविधता और एनीमिया के स्तर में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है।

परिणाम– अनुभाग शहरी और ग्रामीण किशोरियों में आहार विविधता और एनीमिया के स्तर की तुलना पर आधारित है। कुल 200 किशोरियाँ (100 शहरी, 100 ग्रामीण) से प्राप्त डेटा का विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया गया है।

सामाजिक–आर्थिक प्रोफाइल

श्रेणी	**शहरी (%)**	**ग्रामीण (%)**
आयु (15–19 वर्ष)	72	76
माता शिक्षित	68	32
मासिक पारिवारिक आयः ₹10,000 से अधिक	61	23
सरकारी IFA टैबलेट सेवन	35	19

ग्रामीण किशोरियों में मातृ शिक्षा और पारिवारिक आय का स्तर अपेक्षाकृत कम था।

आहार विविधता स्कोर (DDS)

DDS स्कोर स्तर	**शहरी (%)**	**ग्रामीण (%)**
0–3 (कम विविधता)	12	34
4–6 (मध्यम)	65	56
7–9 (उच्च)	23	10

शहरी किशोरियों में आहार विविधता बेहतर पाई गई। ग्रामीण क्षेत्र में हर तीसरी किशोरी का DDS स्कोर 3 या उससे कम था।

हीमोग्लोबिन स्तर (Hb)

एनीमिया स्तर Hb (g/dl)	**शहरी (%)**	**ग्रामीण (%)**
सामान्य ≥12.0	38	22
हल्का 11–11.9	42	40
मध्यम 8–10.9	18	31
गंभीर <8.0	02	7

ग्रामीण किशोरियों में मध्यम व गंभीर एनीमिया की दर शहरी क्षेत्र की तुलना में अधिक थी।

DDS और Hb स्तर के बीच संबंध

DDS स्कोर स्तर औसत Hb (g/dl)

DDS स्कोर स्तर	**औसत Hb (g/dl)**
0–3	9.60
4–6	10.80
7–9	12.3

Pearson correlation (r)– . 0.68ए p< 0.001, आहार विविधता और हीमोग्लोबिन स्तर के बीच सकारात्मक और मजबूत संबंध पाया गया।

अन्य विश्लेषण– जिन किशोरियों ने सप्ताह में 3 बार हरी पत्तेदार सब्जियाँ खाईं, उनका औसत Hb स्तर 1.2 g/dl अधिक था। जिन्होंने विटामिन–C युक्त फल (नींबू, अमरूद, संतरा) नियमित खाए, उनमें एनीमिया की दर 27.00% कम थी। IFA टैबलेट सेवन करने वालों में एनीमिया की गंभीरता अपेक्षाकृत कम थी।

सह–संबंध स्कोर (शहरी बनाम ग्रामीण अंतर)

चर	सह–संबंध स्कोर	p value	निष्कर्ष
DDS स्कोर	18.9	$p<0.001$	अत्यधिक महत्वपूर्ण अंतर
एनीमिया स्तर	11.4	$p<0.003$	महत्वपूर्ण अंतर

शहरी और ग्रामीण किशोरियों के बीच आहार विविधता और एनीमिया स्तर में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

चर्चा– यह अध्ययन गया जिले की 200 किशोरियों (100 शहरी एवं 100 ग्रामीण) में आहार विविधता और एनीमिया के स्तर के तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित है। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि शहरी और ग्रामीण किशोरियों के बीच आहार विविधता और एनीमिया के स्तर में महत्वपूर्ण भिन्नताएँ हैं, जो सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक, और पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित हैं।

अध्ययन की सीमाएँ– अध्ययन का नमूना केवल गया जिले तक सीमित था, जिससे परिणामों को पूरे बिहार या अन्य क्षेत्रों पर सामान्यीकृत करना कठिन है। 24–घंटे आहार स्मरण विधि में याददाश्त की सीमाएँ हो सकती हैं। हीमोग्लोबिन स्तर का एक ही समय पर मापन किया गया, जिससे मौसमी परिवर्तन का आकलन संभव नहीं था।

आहार विविधता में अंतर– अध्ययन में पाया गया कि शहरी किशोरियों की आहार विविधता ग्रामीण किशोरियों की तुलना में बेहतर है। शहरी किशोरियों को ताजे फल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ और डेयरी उत्पाद अधिक मात्रा में प्राप्त हो रहे थे, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य समूहों की पहुँच सीमित थी। यह अंतर आर्थिक स्थिति, शिक्षा, बाजार उपलब्धता, और पोषण जागरूकता की कमी से जुड़ा हुआ है। इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत भोजन पैटर्न और खाद्य विविधता की कमी भी इस अंतर का एक प्रमुख कारण है। यह निष्कर्ष राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5) और बिहार के क्षेत्रीय अध्ययनों के साथ मेल खाता है, जिनमें ग्रामीण किशोरियों में कम आहार विविधता और पोषण की कमी का उल्लेख किया गया है।

एनीमिया के स्तर में अंतर– हीमोग्लोबिन स्तर के आंकड़ों ने यह दर्शाया कि ग्रामीण किशोरियों में एनीमिया का प्रतिशत शहरी किशोरियों की तुलना में अधिक है। ग्रामीण किशोरियों में मध्यम और गंभीर एनीमिया के मामले अधिक पाए गए, जो आहार विविधता की कमी के साथ–साथ आयरन सप्लीमेंटेशन की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच, और सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन से जुड़े हैं। शहरी किशोरियों में बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ, पोषण शिक्षा, और आयरन–फोलिक एसिड (IFA) टैबलेट का अधिक सेवन एनीमिया के स्तर को कम करने में सहायक साबित हुआ। यह परिणाम बिहार स्वास्थ्य मिशन और अन्य संबंधित रिपोर्टों के अनुरूप है।

आहार विविधता और एनीमिया के बीच संबंध– सांख्यिकीय विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि आहार विविधता स्कोर और हीमोग्लोबिन स्तर के बीच एक सकारात्मक सहसंबंध मौजूद है। इसका अर्थ है कि जिन किशोरियों का आहार विविध था, उनमें एनीमिया की संभावना कम थी। इस संबंध का आधार यह है कि विविध आहार से आयरन और विटामिन सी जैसे पोषक तत्वों की बेहतर उपलब्धता होती है, जो रक्त निर्माण में मदद करते हैं। यह निष्कर्ष अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय शोधों से भी समर्थन प्राप्त करता है, जिनमें बताया गया है कि आहार विविधता बढ़ाने से किशोरियों में एनीमिया की दर में कमी आती है।

सामाजिक–आर्थिक और पर्यावरणीय प्रभाव– मातृ शिक्षा, पारिवारिक आय, और परिवार के पोषण संबंधी व्यवहार किशोरियों के आहार पैटर्न और एनीमिया स्तर को प्रभावित करते हैं। अध्ययन में पाया गया कि जिन परिवारों में माताएँ शिक्षित थीं, वहाँ किशोरियों में बेहतर पोषण और कम एनीमिया पाया गया। यह सामाजिक जागरूकता और स्वास्थ्य संबंधी फैसलों में महिलाओं की भूमिका को दर्शाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, पोषण संबंधी गलत धारणाएँ, और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी किशोरियों के पोषण को प्रभावित करती हैं। इन बाधाओं के कारण किशोरियों में कुपोषण और एनीमिया की समस्या बनी रहती है।

सुझाव– अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि किशोरियों में एनीमिया नियंत्रण के लिए आहार विविधता बढ़ाना आवश्यक है। इसके लिए स्कूल और सामुदायिक स्तर पर पोषण शिक्षा और जागरूकता कार्यक्रम प्रभावी साबित होंगे। साथ ही, आयरन सप्लीमेंटेशन और स्वास्थ्य सेवाओं की बेहतर पहुँच सुनिश्चित करना भी जरूरी है।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस–5), स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार 2019–21।
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ), किशोरों में एनीमियारू वैश्विक प्रसार और कारण। जिनेवारू डब्ल्यूएचओय 2021।
3. खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ), घरेलू और व्यक्तिगत आहार विविधता मापने के लिए दिशानिर्देश। रोम; एफएओय 2019।
4. कुमार, एस., और सिंह, पी. (2018), ग्रामीण बिहार में किशोरियों में पोषण की स्थिति और आहार संबंधी पैटर्न। जर्नल ऑफ कम्युनिटी न्यूट्रिशन, 14(3), 145–152।
5. बिहार राज्य स्वास्थ्य सोसायटी वार्षिक स्वास्थ्य रिपोर्ट 2020–21। बिहार राज्य स्वास्थ्य मिशनय 2021, पटना।
6. शर्मा, आर. और वर्मा, ए. (2022), बिहार में किशोरियों में एनीमिया पर आहार विविधता का प्रभावरू एक तुलनात्मक अध्ययन। इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 13(2), 245–252.
7. पटना विश्वविद्यालय. (2018), बिहार में किशोरियों में आहार विविधता और एनीमिया पर अध्ययन. अप्रकाशित शोध प्रबंध.
8. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार. पोषण अभियान – राष्ट्रीय पोषण मिशन 2021।
9. राष्ट्रीय पोषण संस्थान (एनआईएन), किशोरों के लिए पोषण संबंधी दिशानिर्देश. हैदराबाद, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषदय 2020।
10. स्थानीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण, गया जिला स्वास्थ्य विभाग (2023), शहरी और ग्रामीण गया में किशोरियों की पोषण स्थिति. अप्रकाशित रिपोर्ट।

प्रश्नोपनिषद के मूलभूत तत्त्व और उनकी प्रासंगिकता

डॉ. मिथिलेश कुमार पाण्डेय*

सारांश

प्रश्नोपनिषद उपनिषद साहित्य की एक महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें ब्रह्म, आत्मा, प्राण, सृष्टि, चेतना और मानव जीवन के गूढ़ आध्यात्मिक सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह उपनिषद छह जिज्ञासुओं द्वारा ऋषि पिप्पलाद से पूछे गए प्रश्नों और उनके उत्तरों के माध्यम से ज्ञान की खोज की परंपरा को प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध लेख में प्रश्नोपनिषद के मूलभूत तत्त्वों का अध्ययन करते हुए उनके दार्शनिक, आध्यात्मिक और आधुनिक जीवन में व्यावहारिक महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रश्नोपनिषद में प्राण को जीवन शक्ति का आधार, आत्मा को परम सत्य का स्वरूप तथा ब्रह्म को समस्त सृष्टि का मूल कारण माना गया है। इसमें मनुष्य के अस्तित्व, चेतना और ज्ञान प्राप्ति के मार्ग को वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण दृष्टिकोण से समझाया गया है। वर्तमान समय में मानसिक तनाव, नैतिक संकट और भौतिकवादी प्रवृत्तियों के बीच प्रश्नोपनिषद के सिद्धांत आत्मज्ञान, संतुलित जीवन, अनुशासन और आध्यात्मिक विकास की प्रेरणा प्रदान करते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रश्नोपनिषद के विचार केवल प्राचीन आध्यात्मिक चिंतन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे आधुनिक मानव जीवन में आत्म-जागरूकता, मानसिक शांति और समग्र विकास के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

की-वर्ड: प्रश्नोपनिषद, उपनिषद, आत्मा, ब्रह्म, प्राण, चेतना, वैदिक दर्शन, आध्यात्मिक ज्ञान, भारतीय दर्शन, मानव जीवन।

१. प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक परंपरा में उपनिषदों को श्रुति साहित्य का मुकुटमणि और ज्ञानकाण्ड का सर्वोपरि स्रोत माना गया है। 'प्रश्नोपनिषद' विशेष रूप से अथर्ववेद की पिप्लाद शाखा से संकलित एक अत्यंत महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ओतप्रोत उपनिषद है। इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें गहनतम ब्रह्मांडीय और आध्यात्मिक सत्यों की खोज प्रश्नों और उत्तरों के माध्यम से की गई है।

इस उपनिषद में छह परम जिज्ञासु ऋषि—सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, कौशल्या, भार्गव और कबन्धी—परम ब्रह्म की खोज में महर्षि पिप्लाद के पास जाते हैं। वे पूर्ण श्रद्धा और नियमपूर्वक एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य और तप का पालन करने के उपरांत महर्षि से एक-एक करके छह प्रश्न पूछते हैं। महर्षि पिप्लाद के ये तार्किक उत्तर सृष्टि की उत्पत्ति, प्राण की महिमा, मानव चेतना की अवस्थाएं, ॐकार साधना और अंततः मानव देह में विद्यमान 'षोडशकल पुरुष' (सोलह कलाओं वाले पुरुष) का विशद वर्णन प्रस्तुत करते हैं। यह शोध लेख इन्हीं छह प्रश्नों में अंतर्निहित दार्शनिक एवं वैज्ञानिक तत्त्वों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

२. प्रथम प्रश्नः सृष्टि तत्त्व और रयि-प्राण की द्वैत अवधारणा

ऋषि कबन्धी कात्यायन ने प्रथम प्रश्न पूछा: "भगवन! यह समस्त प्रजा (सृष्टि) वास्तव में कहाँ से उत्पन्न होती है?" महर्षि पिप्लाद ने इस अत्यंत गंभीर प्रश्न का उत्तर देते हुए सृष्टि के मूल द्वैत तत्त्वों का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि प्रजापति (सृष्टि कर्ता) ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से तप किया और एक अनूठा जोड़ा उत्पन्न किया—'रयि' और 'प्राण'।

प्राण (चेतना/ऊर्जा): यह अमूर्त, चेतन ऊर्जा, पुरुष और सूर्य का प्रतीक है। यह जीवन का सक्रिय और गतिमान तत्त्व है।

रयि (पदार्थ/Matter): यह मूर्त, जड़ पदार्थ, स्त्री और चन्द्रमा का प्रतीक है। यह रूप, आकार और दृश्य जगत का आधार है।

महर्षि पिप्लाद के अनुसार, दृश्य और अदृश्य जगत में जो कुछ भी मूर्त (स्थूल) और अमूर्त (सूक्ष्म) है, वह सब रयि और प्राण का ही पारस्परिक मिलन है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो अल्बर्ट आइंस्टीन का द्रव्यमान-ऊर्जा समतुल्यता का सिद्धांत ($E = mc^2$) इसी प्राचीन सत्य की पुनरावृत्ति प्रतीत होता है, जहाँ पदार्थ (रयि) और ऊर्जा (प्राण) एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

* अध्यापक, राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय, उज्जैन परिसर, उज्जैन, मध्य प्रदेश– 456 006

३. द्वितीय प्रश्नः प्राण तत्त्व की सर्वोपरिता और जैव-ऊर्जा

भार्गव वैदर्भ का द्वितीय प्रश्न मानव शरीर विज्ञान और उसकी आंतरिक शक्तियों से संबंधित थाः "हे भगवन! इस शरीर को धारण करने वाले और इसे प्रकाशित करने वाले कितने देवता हैं, और उनमें सबसे श्रेष्ठ कौन है?"

ऋषि पिप्लाद ने इसके उत्तर में एक सुंदर आख्यान प्रस्तुत किया। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी जैसी भौतिक शक्तियाँ तथा वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र जैसी ज्ञानेंद्रियाँ गर्व करने लगीं कि वे ही इस शरीर को संभालती हैं। तब मुख्य प्राण ने उनसे कहा कि वे भ्रम में न रहें, क्योंकि वही स्वयं को पाँच रूपों में विभाजित करके इस शरीर को धारण और पोषित करता है। देवताओं को विश्वास नहीं हुआ, तो मुख्य प्राण ने प्रदर्शन के लिए शरीर से ऊपर उठना शुरू किया। जैसे ही मुख्य प्राण ने शरीर छोड़ा, अन्य सभी इंद्रियाँ (देवता) भी स्वतः खिंची चली आईं, ठीक वैसे ही जैसे रानी मधुमक्खी के छत्ता छोड़ने पर सभी मधुमक्खियाँ छत्ता खाली कर देती हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि 'प्राण' ही सर्वश्रेष्ठ जैव-ऊर्जा (Bio-energy) है, जो समष्टि में सूर्य, अग्नि, इंद्र और पर्जन्य बनकर चमकती है और व्यष्टि (शरीर) में जीवन का संचार करती है।

४. तृतीय प्रश्नः प्राण की उत्पत्ति, विभाजन और शरीर क्रिया विज्ञान

कौशल्या आश्वलायन का तृतीय प्रश्न प्राण के और अधिक सूक्ष्म रहस्यों को जानने के लिए थाः "यह प्राण स्वयं कहाँ से उत्पन्न होता है? यह इस शरीर में कैसे प्रवेश करता है? और अपने को विभक्त करके यहाँ कैसे स्थापित होता है?"

महर्षि पिप्लाद का यह उत्तर अध्यात्म को शरीर विज्ञान (Physiology) से जोड़ता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्राण की उत्पत्ति मूल 'आत्मा' से होती है। जिस प्रकार किसी मनुष्य की छाया उसके शरीर के साथ हमेशा जुड़ी रहती है, ठीक उसी प्रकार यह प्राण भी मन के संकल्पों और कर्मों के कारण आत्मा के साथ संयुक्त होकर देह में प्रवेश करता है। शरीर को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुख्य प्राण स्वयं को पाँच रूपों (पंचप्राण) में विभाजित करता है:

प्राण नाम	शारीरिक स्थान (स्थान)	मुख्य कार्य एवं शारीरिक प्रणाली
१. प्राण	मुख, नासिका और हृदय क्षेत्र	श्वसन तंत्र (Respiration), श्वास लेना और छोड़ना तथा जीवन ऊर्जा को ग्रहण करना।
२. अपान	पायु और उपस्थ (नाभि से नीचे का भाग)	उत्सर्जन तंत्र (Excretion) और जनन क्रिया; मल, मूत्र और गर्भ को बाहर निष्कासित करना।
३. समान	नाभि मंडल के मध्य भाग में	पाचन तंत्र (Digestion); खाए हुए अन्न और पिए हुए जल को समता से पचाना और ऊर्जा वितरित करना।
४. व्यान	समस्त नाड़ियों और संपूर्ण शरीर में	रक्तसंचार (Circulation) और तंत्रिका तंत्र; पूरे शरीर में गति और पोषक तत्वों का संचरण करना।
५. उदान	कण्ठ प्रदेश और सुषुम्ना नाड़ी	ऊर्ध्वगमन; मृत्यु के समय जीवात्मा को उसके कर्मानुसार उच्च या निम्न लोकों में ले जाना।

५. चतुर्थ प्रश्नः चेतना की अवस्थाएं - मन और आत्मा का मनोविज्ञान

सौर्यायणी गार्ग्य का चतुर्थ प्रश्न विशुद्ध मनोविज्ञान और मानव चेतना के स्तरों की गहराई में उतरता है: "हे महर्षि! इस पुरुष (मनुष्य) के सो जाने पर कौन-कौन सी इंद्रियाँ सो जाती हैं? इसमें कौन जागता रहता है? स्वप्न देखने वाला देव कौन है? और वह परम सुख किसे मिलता है?"

महर्षि पिप्लाद ने निद्रा और चेतना की तीन प्रमुख अवस्थाओं की सूक्ष्म व्याख्या कीः

1. जाग्रत से स्वप्नावस्था: जैसे सूर्यास्त के समय सूर्य की सभी किरणें उसके तेज-मंडल में विलीन हो जाती हैं और सूर्योदय पर पुनः फैल जाती हैं, ठीक वैसे ही सुषुप्ति के समय समस्त ज्ञानेंद्रियाँ और कर्मेंद्रियाँ 'मन' नामक देव में एकाकार हो जाती हैं। अतः सो जाने पर इंद्रियाँ कार्य नहीं करतीं, परंतु 'मन' जागता रहता है। स्वप्नावस्था में यह मन ही पूर्व अनुभवों, इच्छाओं और वासनाओं के आधार पर एक काल्पनिक संसार की रचना करता है और स्वयं ही उसका भोक्ता बनता है।
2. सुषुप्ति (गहरी नींद) और परम सुख: जब मन परमात्मा के प्रकाश या तेज से पूरी तरह अभिभूत हो जाता है, तब स्वप्नों का आना बंद हो जाता है। इस अवस्था में जीव को असीम शांति और 'आनंद' का अनुभव होता है। महर्षि समझाते हैं

कि जैसे पक्षी शाम को अपने आश्रय वृक्ष की ओर लौट आते हैं, वैसे ही सुषुप्ति की अवस्था में सब कुछ (मन, बुद्धि, अहंकार और इंद्रियाँ) अंततः परम आत्मा में ही विश्राम पाते हैं।

६. पंचम प्रश्नः ॐकार साधना और अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति

शैव्यान सत्यकाम का पाँचवाँ प्रश्न ध्यान योग और मंत्र साधना से संबंधित थाः "हे भगवन ! जो मनुष्य जीवन के अंतिम समय तक 'ॐ' (ओम्) इस अक्षर का ध्यान करता है, वह इसके द्वारा किस लोक को जीतता है?"

पिप्लाद ऋषि ने उत्तर दिया कि यह ॐकार ही परब्रह्म (निर्गुण, निराकार) और अपरब्रह्म (सगुण, साकार) दोनों का साक्षात स्वरूप है। उन्होंने ॐकार की तीन मात्राओं (अ, उ, म) के आधार पर साधना के तीन स्तर बताएः

1. 'अ' मात्रा का ध्यान: यदि साधक केवल प्रथम मात्रा का ध्यान करता है, तो वह ऋग्वेद की ऋचाओं के प्रभाव से मृत्यु के बाद पुनः अत्यंत पवित्र मनुष्य योनि (पृथ्वी लोक) में जन्म लेता है और तप व श्रद्धा का जीवन जीता है।
2. 'उ' मात्रा का ध्यान: जो द्वितीय मात्रा 'उ' में मन को एकाग्र करता है, उसे यजुर्वेद के प्रभाव से अंतरिक्ष लोक (सोमलोक) की प्राप्ति होती, जहाँ वह दिव्य सुख भोगकर पुनः पृथ्वी पर लौट आता है।
3. 'म' मात्रा (पूर्ण ॐकार) का ध्यान: जो साधक 'ॐ' की तीनों मात्राओं के सामंजस्य से परम पुरुष का ध्यान करता है, वह सामवेद की किरणों द्वारा सूर्यलोक (ब्रह्मलोक) को प्राप्त होता है। जैसे सर्प अपनी केंचुल से मुक्त हो जाता है, वैसे ही वह सब पापों से मुक्त होकर उस परम शांत, अजर, अमर और अभय अक्षर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

७. षष्ठ प्रश्नः षोडशकल पुरुष (सोलह कलाओं वाला परम सत्य)

सुकेशा भारद्वाज का अंतिम प्रश्न इस उपनिषद का दार्शनिक चरमोत्कर्ष है: "हे महर्षि ! राजकुमार हिरण्यनाभ मेरे पास आया और पूछा कि क्या तुम सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानते हो? मैंने कहा कि मैं नहीं जानता। अब आप मुझे बताइए कि वह सोलह कलाओं वाला पुरुष कहाँ स्थित है?"

महर्षि पिप्लाद ने अत्यंत सुंदर उत्तर देते हुए कहा कि वह पुरुष (पर॰त्मा) कहीं दूर आकाश या किसी अन्य लोक में नहीं, बल्कि इसी मानव शरीर के भीतर, हृदय रूपी आकाश में स्थित है। आत्मा स्वयं अभौतिक है, परंतु अभिव्यक्ति के लिए उसने स्वयं से १६ कलाओं (उपाधियों या शक्ति-पद्धतियों) की रचना की है। ये कलाएँ इस प्रकार हैं:

क्रम	कला का नाम	दार्शनिक एवं व्यावहारिक अर्थ
१	प्राण	सृष्टि और जीवन की मूल क्रियात्मक ऊर्जा।
२	श्रद्धा	सत्य के प्रति आस्तिक बुद्धि, निष्ठा और आत्म-विश्वास
३	आकाश	अवकाश तत्व, जिसमें समस्त ब्रह्मांड स्थित है।
४	वायु	गतिशीलता, प्राण वायु और संचरण का आधार।
५	तेज (अग्नि)	ऊर्जा, प्रकाश, पाचन और रूपांतरण की शक्ति।
६	जल	रस तत्व, तरलता, जीवन का प्रवाह और संसक्ति।
७	पृथ्वी	स्थायित्व, ठोसपन, देह और भौतिक जगत का आधार
८	इन्द्रिय	पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और पाँच कर्मेंद्रियाँ (अनुभव के साधन)।
९	मन	संकल्प-विकल्प, भावनाएँ और विचार प्रक्रिया का केंद्र।
१०	अन्न	भौतिक शरीर का पोषण करने वाला आहार
११	वीर्य	शारीरिक व मानसिक सामर्थ्य, ओज और पराक्रम।
१२	तप	इंद्रिय-संयम, एकाग्रता और आत्म-शुद्धि की अग्नि।
१३	मन्त्र	ज्ञान, विवेकयुक्त विचार और पवित्र ध्वनि तरंगें।
१४	कर्म	सृष्टि चक्र को गति देने वाली क्रियाएँ
१५	लोक	कर्मों के फल भोगने के विभिन्न स्तर या आयाम
१६	नाम	पदार्थों और व्यक्तियों की विशिष्ट पहचान (संज्ञा)

महर्षि पिप्लाद अंत में दृष्टांत देते हैं कि जिस प्रकार समुद्र की ओर बहने वाली नदियाँ समुद्र को प्राप्त करके उसमें विलीन हो जाती हैं और अपने नाम व रूप को खो देती हैं, केवल 'समुद्र' ही शेष रहता है; ठीक उसी प्रकार जब साधक को

आत्मज्ञान होता है, तो उसकी ये सभी १६ कलाएँ अपने नाम-रूप को छोड़कर उस परम पुरुष में विलीन हो जाती हैं। तब वह पुरुष कला-रहित, पूर्ण, शांत और अमर हो जाता है।

८. निष्कर्ष

प्रश्नोपनिषद केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह एक व्यवस्थित, प्रामाणिक और वैज्ञानिक शोध-पद्धति है जहाँ गुरु और शिष्यों के बीच अंधविश्वास से परे होकर तार्किक संवाद होता है। यह उपनिषद बाह्य स्थूल जगत की उत्पत्ति (रयि और प्राण) से अपनी यात्रा प्रारंभ करता है और मानव शरीर के क्रिया विज्ञान (पंचप्राण), मानस शास्त्र (स्वप्न व सुषुप्ति), ध्यान की पराकाष्ठा (ॐकार साधना) से होते हुए अंततः आंतरिक चेतना (षोडशकल पुरुष) के साक्षात साक्षात्कार पर समाप्त होता है। आधुनिक युग में, जहाँ मनुष्य अत्यधिक भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण अवसाद, तनाव और अस्तित्वगत संकट से जूझ रहा है, प्रश्नोपनिषद का यह दिव्य ज्ञान हमें शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्थिरता और आत्मिक शांति प्राप्त करने का एक अत्यंत स्पष्ट और व्यावहारिक मार्ग प्रशस्त करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ईशादि नौ उपनिषद (प्रश्नोपनिषद शंकरभाष्य सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (१९५३), द प्रिसिंपल उपनिषद्स, जॉर्ज एलन एंड अनविन, लंदन।
3. स्वामी गंभीरानन्द (अनुवादक), Eight Upanishads: With the Commentary of Sankaracarya, अद्वैत आश्रम, कोलकाता।
4. स्वामी विवेकानन्द, उपनिषदों का संदेश , रामकृष्ण मिशन आश्रम।